सम्पादक–मण्डल

विषय–सूची

ओ३म्

गुरुकुल पत्रिका

(गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयस्य, मासिक-पत्रिका)

आश्विन : २०४० वर्ष : ३५, अंक : ६
सितम्बर : १९८३ पूर्णांक : ३४८

श्रुति-सुधा

अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् । हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥ साम० ७६१ ॥

अन्वय :—पुरुप्रियं हव्यवाहं विश्पतिम् अग्निम् हवीमभिः सदा हवन्ते ।

संक्षिप्त-अन्वयार्थ :—अत्यन्त प्यारे, हव्य द्रव्यों को प्राप्त कराने वाले, प्रजापति, प्रकाशस्वरूप अग्रणी परमेश्वर का [ज्ञानी जन] सदा आह्वानों द्वारा आह्वान करते हैं।

अन्वय:-(पुरुप्रियम्) अत्यन्त प्रिय-सर्वप्रिय (हव्यवाहम्) हव्य अर्थात् पुष्ट मिष्ट सुगन्धित और पौष्टिक पदार्थों को प्राप्त कराने वाले (विश्पतिम्) प्रजाओं का अपने न्याय-नियमानुसार पालन-पोषण करने वाले (अग्निम्-अग्निम्) ज्ञानप्रकाश के अनुपम स्रोत, सब का नेतृत्व करने वाले अग्रणी परमेश्वर को ज्ञानी-जन-उपासक-जन (हवीमभिः सदा हवन्ते) अपनी हवियों द्वारा सदा आहूत करते हैं-अपनी अर्चनाओं द्वारा सदा अर्चित करते हैं-अपनी हार्दिक टीस से निकली हुई पुकारों द्वारा पुकारते हैं।

वह प्रभु 'पुरुप्रिय' है, बहुत प्यारा है, बहुत तृप्त करने वाला है। वह इतना प्यारा है, इतना तृप्त करने वाला है कि उस जैसा दूसरा कोई हो ही नहीं सकता। वह जितने भी हव्य द्रव्य उत्पन्न करता है-जितने भी पदार्थ उत्पन्न करता है, वह स्वयं नही भोगता वरन् प्यार के कारण हमें ही सब के सब प्रदान कर देता है। वह 'विश्वपति' है, प्रजापति है अर्थात् वह सब को सन्तान समझकर सब का अपने न्याय नियमों से पालन पोषण करता है। वह अग्निरूप है, ज्ञानप्रकाश का पुञ्ज है, सब का अग्रणी-नेता है। उस से सभी ज्ञानी-ध्यानी बुद्धिमान् जन प्रकाश पाते हैं, प्रेरणा पाते हैं, तभी तो वे अपने जीवन को निखार पाते हैं, इसलिए अपने जीवन की परिस्थिति में वे सब अपनी हार्दिक अभिलाषाओं से प्रेरित होकर सदा उसको ही अपनी हार्दिक याचनाओं से याचते हैं, प्रार्थनाओं से प्रार्थते हैं, पुकारों से पुकारते हैं।

महापुरुषों के वचन

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।
बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम् ।।

जब शुद्ध मन युक्त पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ जीव के साथ रहती हैं और बुद्धि का निश्चय स्थिर होता है, उसको परम गति अर्थात् मोक्ष कहते है। (सत्यार्थप्रकाश—नवमसमुल्लास)

वह्नेर्यथा योनिगतस्य मूर्तिर्न दृश्यते नैव च लिङ्गनाशः ।
स भूय एवेन्धनयोनिगृह्यस्तद्वोभयं वै प्रणवेन देहे ।।

श्वेताश्वतरोपनिषद्-१.१३ ।

जैसे अग्नि का स्वरूप अपने योनि अर्थात् प्रादुर्भाव स्थान (काष्ठ आदि) में रहते हुए नहीं दीखता तथापि काष्ठादि में अग्नि के चिह्न का नाश भी नही है, किन्तु उसको दो काष्ठो के निर्मन्थन से देख सकते हैं। इसी प्रकार परमात्मा हमारे देह में वर्तमान हैं, किन्तु ओङ्कार के अर्थ—पूर्वक जाप से वह प्रकाशित होता है।

ओं तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिता पुरा ।। गीता-१७।२३

ओ३म, तत्, सत् यह तीन प्रकार का ब्रह्म अर्थात् परमेश्वर के लिए शब्द-व्यवहार किया गया है। उसी ब्रह्म ने सृष्टि के आरम्भ में ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्मज्ञानी ऋषि, वेद और यज्ञ उत्पन्न किये।

राजा का मूर्ख होना बहुत बुरा है, परन्तु प्रजा का भी मूर्ख रहना बहुत बुरा है। किन्तु मूर्खों के ऊपर राज्य करने से राजा की शोभा नहीं। प्रजा को विद्यायुक्त धर्मात्मा और चतुर करके उन पर राज्य करने में राजा की शोभा तथा सुखों की उन्नति होती है। ऐसा कानून राजा और प्रजा को चलाना चाहिए और मानना चाहिए, जिससे द्यूत, चोरी, परस्त्री-गमन, मिथ्या-साक्षी, बाल्यावस्था में विवाह और विद्या का लोप न हो पावे। (सत्यार्थ प्रकाश)

स्वामी विरजानन्द जी का अपने छात्रवर्ग के प्रति—

इस समय मैं जिस अग्नि को धूमाकार से तुम्हारे भीतर विनिविष्ट किये देता हूं। वह समय पाकर महाग्नि में परिणित होकर "भारतभूमि के भ्रान्त मत और भ्रान्त विश्वास रूप जञ्जालराशि को भस्मीभूत कर डालेगी।" (विरजानन्दचरित—देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय)

□

महापुरुष-चरितम्

स्वामी विरजानन्द—

विद्वत्ता—

एक बार धरणीधर-नामक एक नैयायिक पण्डित मथुरा में आये और शास्त्रालाप के उद्देश्य से दण्डी जी की पाठशाला में भी उपस्थित हुए। धरणिधर ने न्यायशास्त्र के अध्ययनार्थ १४ वर्ष का समय नवद्वीप में लगाया था। थोडी देर के वार्तालाप के पश्चात् ही धरणिधर को यह बात कहकर विदा लेनी पड़ी– "मैंने चौदह वर्ष का समय वृथा ही नष्ट किया। नवद्वीप न जाकर आप के ही पास आकर पढना अच्छा होता ।"

विद्या व्यवसनी—

पढाने के समय से भिन्न विराजानन्दजी की पाठशाला का द्वार बन्द रहता था। जब कोई आकर बाहर से द्वार को खटखटाता तो वे पूछते—"तुम कौन हो"? यदि आगन्तुक कहता कि "मैं आपका दर्शन करने आया हू, तो दण्डी जी उत्तर देते कि "दर्शन की आवश्यकता नही है, चले जाओ" और यदि आने वाला कहता कि मै विद्यार्थी या प्रसंगार्थी हू, तो झट द्वार खोलकर उसे भीतर बुला लेते और उसको पढ़ाने बैठ जाते या उसके साथ विद्या सम्बन्धी वार्तालाप करने लग जाते।

(विरजानन्दचरित–देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय)

महात्मा गांधी—

साधारणतः पाठशाला की पुस्तकों के सिवाय और कुछ पढने का मुझे शौक न था। मैं इस लिये पाठ पढता था कि पाठ तैयार करने चाहियें, उलाहना न सहना चाहिये, शिक्षक को धोखा न देना चाहिये। लेकिन मन अलसा जाता और पाठ अक्सर कच्चे रह जाते। किन्तु पिताजी द्वारा खरीदा गया। "श्रवण–पितृ–भक्ति' नाटक पढने की इच्छा मुझे हुई। उसे मै अतिशय रसपूर्वक पढ़ता गया। कांच में चित्र दिखाने वाले से मैंने वह दृश्य भी देखा, जिसमें श्रवण अपने माता-पिता को काँवर में बैठाकर ले जाता है। मुझ पर इन दोनों बातों की गहरी छाप पड़ी और मन में विचार आने लगे कि 'मुझे भी श्रवण के समान बनना चाहिए।'

इन्हीं दिनों मैंने 'हरिश्चन्द्र' नाटक देखा। उसे बार-बार देखने की इच्छा होने लगी। पर यों बार-बार तो कौन जाने देता? फिर भी अपने मन में इस नाटक को सैकड़ों बार खेला होगा। मुझे हरिश्चन्द्र के सपने आते। मन में एक ही धुन रहती—"हरिश्चन्द्र की तरह सत्यवादी सब क्यों नहीं हो सकते?" जैसी विपत्तियां हरिश्चन्द्र पर पड़ी, वैसी विपत्तियों को सहना और सत्य का पालन करना ही वास्तविक सत्य है। (गाधी जी की आत्मकथा)

भारतोदय–पत्रिकातः साभारं समुद्धृतः—

सृष्टिविद्यैव वेद–विद्या

—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल

वेदस्य भारतीयोऽर्थः विश्वात्मकं ज्ञानम् । शब्दराशिरेव वेद इति या संज्ञा सापि समीचीनैव वेदस्य। परमयं स्थूलोऽर्थः वेदस्य कश्चिदंश एव। विश्वज्ञानस्य समष्टिः अनादिरनन्तश्च। इदं विश्वात्मक ज्ञानमविनाश्यक्षरतत्त्वमस्ति । अस्यैव परा वागित्यपरं नाम तद् ब्राह्मणोऽपरं रूपमस्ति । अनेन प्रकारेण वेदतत्त्वेन सृष्टेरुद्गमः, विकासश्चाभूत् । अर्थात् सृष्टेरादौ (मूले) ज्ञानशक्तिरस्ति। तज्ज्ञानं यद्विराटचितस्य अनन्ते एवं देशकालातीने, अचिन्त्याप्रतर्क्य बिन्दौ निहितमस्ति। अस्यैव बिन्दो (केन्द्रस्य) गुहा, अव्यक्ततत्त्वमिति वा वदन्ति।

इदमेव यथार्थसत्यमस्ति यत्प्रकटीभूतस्य जगतः किमप्यव्यक्ततत्त्वमस्तीति। अस्मिन् विषये धर्मं, दर्शनमेवं विज्ञानस्य साक्षी स मानमेवास्ति। गणितशास्त्रस्याव्यक्तबिन्दुरेखात्र दृष्टान्ते पर्याप्तमस्ति। यो व्यक्तबिन्दुरस्ति स तु इतस्ततो भूत्वा बिन्दुत्रयरुपेण विकीर्य रेखारुपेण परिणतो भवति। रेखया वर्गस्य तेन च घनस्योत्पत्तिर्भवति । अन्ततो गत्वा घनस्यास्तित्व व्यक्तबिन्दोरधीन व्यक्तबिन्दुस्तु सामर्थ्यमपेक्षतेऽव्यक्तस्य। अव्यक्ततत्त्वं तदस्ति यत्र देशकालयोरसम्बन्धो नास्ति। विश्वस्य नामरूपे देशकालावेव भवतः। नाम्नो रूपस्य च सत्तऽतीव महती विद्यते। एव दुर्घर्षभूतायाः सत्ताया नामैव विश्वमस्ति।

नानारूपाणां समष्टिरेव विश्वम्। एकस्य नानारूपेण परिणतिरेव सृष्टिरिति गीयते । यदेकं तत्त्वं तद् नानापदार्थेभ्यो अथवा बहुभ्योऽ (भिन्नमेवास्ति) तीतोऽस्ति इदमेव तत्त्वं गणितशास्त्रे एकमेवाद्वितीयम् अथवा अद्वितीयमेकमस्ति । इदमव्यक्ततत्त्वं कलारहितम्, खण्डरहितम् एकमेवास्ति, यस्मिन्–अंश–कला–खण्ड–भेद–व्यष्टिभावबहुभाव नानाभवानां छाया नास्ति (अर्थादखण्डतत्त्वं वर्तते) अव्यक्तबिन्दुः तत्समुद्भूतजगतो व्यक्तरूपमेव सृष्टेर्विरुद्धद्वयं तत्त्वमस्ति । नास्तीदृशी काऽपि रचनाऽस्य क्षेत्रस्य बहिर्भूता।

शुद्धमेकं तत्त्वं स्वरूपेण रसात्मकमस्ति तदेवाऽऽनन्दात्मकमपि। स एव विराटस्वरूपो भगवान् विश्वस्य मूलकारणमस्ति। स हि प्राकृतिकरूपरहितोऽस्ति। परन्तु ध्यानकर्तुर्हृदये तथा भासते यथा तत्र रूप, आकारः कला संख्यादीना सत्तया एकमखण्ड मनो नाना केन्द्रेषु विभक्तं भवति ।

एक समष्टिमततत्त्व नाना-केन्द्रेष्वथवानेक बिन्दुषु चिदशरूपेण प्रतिबिम्बित भवति । इदमेव सृष्टिरूपमस्माक सर्वेषा प्रत्यक्षमस्ति वयमेवाऽत्र साक्षिणः । यदा रसतत्त्वं केन्द्रविशेषे प्रकट भवति, तदा बलनाम्ना तदेव प्रसिद्धं भवति प्रत्येक केन्द्रस्याथवा बिन्दोः रचना बालस्यैव सृष्टिरस्ति । इदमेव बलस्वरूपं यदसीमितरसस्य सीमितकरणम् रूपादीनां सृष्टिरत्र नैवास्ति । प्रत्येकं मनः प्रत्येका बुद्धिर्वा, एकैक बलमेवाऽस्ति । यद्धरातले व्यक्तं भवति । रस-शान्तिः, बल–क्षोभमस्ति । रसस्वरूप साम्यम् बलस्वरूप वैषम्यमिति । यत्र गत्यागतीना क्रिया नाऽस्ति, तत्रैव शान्तस्थितिभावोऽस्ति रसात्मकस्थिनितत्त्वस्य क्षोभे तदैव परिवर्तन भवति, यदा गत्यागत्योरुदयः ।

ईदृशदृष्टान्ताना प्रसारण यावत् शक्य दूर नेतु शक्यते । यां परावागिति वदन्ति सैव मूलवेदः, ज्ञानमयी सत्ता वाऽस्ति । सैव परावाक् जगतो ज्ञानकृतानेकैकानां मूलभूताऽस्ति । तयैवाक्षरात्मक-शब्दानामर्थानाञ्च प्राकट्य भवति । यदैव वयमभिलषामस्तदैव शब्दानर्थांश्च प्राप्नुमः । यतो-ह्याकाश एवैतेषा निधिरस्ति । अस्माक वाह्याभ्यन्तरप्रयत्ने नैव शब्दाः प्रादुर्भवन्ति पुनराकाशे विलीयन्ते ।

शब्दमेव वागिति वदन्ति । शब्दोऽथवा वागाकाशस्य गुणोऽस्ति । नभः पञ्चभूतेष्वत्यन्तसूक्ष्म–तत्त्वमस्ति । यत्किमपि सूक्ष्मातिसूक्ष्ममव्यक्ततत्त्व प्रथमं महदात्मना विश्वात्मना परिणमति । तस्मिन्महति विराजि वा व्यक्तिगतो मानसकेन्द्राः प्रकटिता भवन्ति । तेषु मानसकेन्द्रेषु …………शक्तेः रजोगुणतारतम्येन स्पन्दनेन वा पञ्चभूतानामुत्पत्तिर्भवति । एषु सूक्ष्मातिसूक्ष्मतत्त्वमाकाशरूपमेव प्रथमम् ।

आकाश. सर्वव्यापकोऽखण्डश्चाऽस्ति । परं स तु भौतिकरचनारूप एव । वाग्वा शब्दगुण-कमाकशम् । साऽपि भौतिकरूपैव । शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धानां क्रमेण पञ्चतन्मात्राणामभिव्यक्तिः पञ्चभूतरूपेण भवति । इदमेव भौतिकं विश्वमस्ति । सृष्टेर्यदव्यक्तमूलमस्ति तद्यदि तत् शब्दव्यवहार्यं भवति तदा । विश्वमेतत् शब्देन व्यवहार्यं भवति ।

तदव्यक्ततत्स्वरूपस्य मर्यादा वा सीमा नास्त्येव । तस्यैवेयत्तया मात्रया वा विश्वमिदं प्रकटी भवति । अतएव पञ्चभूतानां पञ्चगुणाः तन्मूलाव्यक्ततत्त्वस्य पञ्चमात्रा इति कथ्यन्ते । प्रथम–तन्मात्रा शब्द । शब्दराशिमयो वेदस्तन्मात्राया भूमौ भौनिक एवं सीमितोऽस्ति । परन्तु तत्पृष्ठभावी या ज्ञानसमष्टिरस्ति । साऽव्यक्ताखण्डरूपैवास्ति । तस्याव्यक्तस्य सीमा नास्ति । तदेवाव्यक्तं दिव्य-वागस्ति । यद्दिव्यमस्ति तदेवामृतमिति कथयन्ति । यत् पञ्चभूतेषु तन्मात्रासु वा परिच्छिन्नं भवति तदेव मर्त्यं भवति । तदेव देश-काल–नाम–रूप–जन्म–विनाशानामधीनमस्ति । अनया दृष्ट्या शब्दार्थ–मयी या आकाशस्य वागस्ति सा मर्त्या वागिति कथ्यते ।

मनुष्यसम्बन्धिमनस: खण्डात्मकं ज्ञानं मर्त्यस्यैवाधीनमस्ति । परन्त्वस्य भौतिकाकाशस्य यन्मूलमस्ति तमेव परमं व्योमेति वदन्ति । अनादेरनन्तस्य वेदस्य तदेव परमं व्योम उद्गमस्थानमस्ति । तदेव परा वागथवाऽमृतवागस्ति वैदिकभाषायां तत्स्रोतो वाचो अमृतसमुद्र इति कथयन्ति । तस्यैव ब्रह्म-सरोवर इत्यपरं नामास्ति । तदेव बुद्धेरव्यक्तं सरः । तस्यैव सरोवरस्य जलं प्रत्येकव्यक्तेर्मानसकमण्डलौ प्रवाहरुपेणागच्छदस्ति । एतदेव व्यक्तत्वं ब्रह्मणः कमण्डलोर्जलमस्ति । येन चतुर्वेदानां पञ्चभूतानाञ्च सृष्टिर्भवति कमण्डलोरयं एनमेव सकेतयति ।

वेदेष्वनिरुक्तस्यैवममूर्तं प्रजापतेः 'क' सकेतोऽस्ति । 'कस्मै देवाय हविषा विधेम' अस्मिन्मन्त्रे तस्यैवाह्वानमस्ति । तस्याव्यक्त 'क' तत्त्वस्यानेकानि नामानि सन्ति परोक्षाथवा संकेतभाषायां तमेव ऊर्ध्वः, गुहा, अजायमानः, हिरण्यगर्भः, नभ्यप्रजापतिरिति नाम्ना व्यवहरन्ति । तस्याव्यक्तस्य व्यक्त-भावरूपेण प्रकटनमेव 'क' प्रजापतेः केन्द्रस्य वा चतुर्दिक्षु मण्डलनिर्माणमस्ति । अव्यक्तबिन्दोर्मण्डलमेव कमण्डलुः । कमण्डलुरेकं पात्रमस्ति, तमेव वपनमिनि वदन्ति । इदं सर्व विश्व आवपनरूपमस्ति । तस्यैकैकं रूपं आवपनमस्ति ।

प्रत्येक मनः स्वस्य स्वस्य बृंहणात्मक वा वृद्धि गच्छतो ब्राह्मणो मण्डल कमण्डलु वाऽस्ति अस्मिन्कमण्डलौ यज्जलमस्ति तस्मादेवाव्यक्तज्ञानसरोवरादागतोऽशोऽस्ति इमामेव सरस्वती वागिति नाम्ना व्यवहरन्ति या मूलभूता परा वागस्ति, ता वेदेषु परमेष्ठिनी वाक् अथवा अम्भ्रणी वागिति कथितमस्ति ।

एवं या मौलिकी वेदविद्याऽस्ति, सैव विश्वस्य समष्टिज्ञानमस्ति । तेनैव बुद्धिमनसोर्द्वारा भौतिकवाचः एवं विश्वस्य रचना भवति । वाचः सृष्टिरेव वेदसृष्टिरस्ति । ब्रह्मणो यावन्मुण-मयी वृष्टिरस्ति, तावत्येवेयं वाङ्मयी भूतात्मिका सृष्टिरस्ति । वाक्प्राणवेदत्रयाणां त्रयो विद्येति संज्ञास्ति ।

मनस्येव विश्वस्य त्रिविधविस्तारोऽस्ति एवमयमेवाव्ययप्रजापते रूपमस्ति इदमेव विश्वस्य मूलमस्ति । त्रिकैव वेदविद्याया आधारोऽस्ति । विश्वविद्यैव वेदविद्याऽस्ति । त्रयीविद्याया त्रिगिति संज्ञाऽस्ति । त्रयोग्नयः त्रयः पुरुषाः, त्रयो गुणाः, तिस्रो मात्राः, त्रयो लोकाः त्रयो देवाः—एते सर्वे मूल-भूताया त्रयी विद्याया एव विस्तारां सन्ति । विश्वस्यैकैकौ कण एतन्मूलभूतत्रिके नैव निर्मितोऽस्ति । एकैकः परमाणुरथवा प्राणात्मकस्पन्दनरूपजीवितघटकोकोशक्रियाया वा त्रयीविद्याया अस्तित्वमस्ति । परमाणोः कोशस्य संस्थानं एकैकं मण्डलमस्ति । इयं सृष्टिर्मण्डलात्मकरचना रूपाऽस्ति ।

वैदिक भाषायां त्रिकस्यास्य महत्त्वपूर्णं रूपं पृथिवी, अन्तरिक्षम् द्युलोकरूपमस्ति । एषां त्रयाणां संचालकशक्तितत्त्वानि–अग्नि—वायु–सूर्यात्मिकानि सन्ति। वस्तुत एते त्रय एकस्यैव मूलभूताग्ने–स्त्रीणि रूपाणि सन्ति । एतावग्नेवन्धूस्तः । यः पृथिव्यामग्निरस्ति, स एवाकाशे सूर्योऽथवादित्योऽस्ति । तमेवेन्द्रमिति कथयन्ति । अग्नीन्द्रौ द्वावपि दिव्यशक्तेस्स्वरूपौ स्तः । अनयोः कल्पना विनिबद्धा न सन्ति किन्तु तरंगिता एव । इयमेव वैदिकार्थानां प्राणवती शैल्यासीत् ।

द्युलोकेऽपीन्द्रो मधवा नामकोऽस्ति । अन्तरिक्षे मरुत्वान्नामकेन्द्र एव पृथिव्यां अष्टवसु समष्टि-र्वसु नामक इन्द्रोऽस्ति । एकैका देवता त्रिप्रकारास्ति । स तु लोकत्रये वसति । तस्येदमेव देवत्वम्, यत्तस्य शक्तिर्देशे काले च कुण्ठिता न भवति । अन्तरिक्षे यो मरुदस्ति स इन्द्रस्याज्ञाकारी (सामन्तः) सहचारी वाऽस्ति । तावेव विद्युच्छक्तेः प्राणशक्तेर्वा रूपवन्तौ स्तः । तेभ्यो या प्रज्ञा मानसशक्तिर्वा सेन्द्रस्यैव रुपमस्ति । एकः अन्यस्मादधिक सूक्ष्मोऽस्ति । इदमेव तारतम्यं एषाम् । सैव शक्तिः स्थूलशरीरस्य सञ्चालनकर्ता वैश्वानरनामकोऽग्निरस्ति । येनान्नस्य परिपाक एवं स्थूलदेहे सप्तधातूनां चितिर्भवति । स्थूलशरीरं पञ्चभूतात्मकवाग्रूपमस्ति । तस्मिन् प्राणोऽस्ति, प्राणश्च सूक्ष्मचितित-त्वस्य प्रज्ञाया वा निवासोऽस्ति । एषां त्रयाणां मेलनेनैव पुरुषस्य जीवनमस्ति । एते त्रयोऽस्य यज्ञस्याग्नयः सन्ति, ये त्रिषु वेदिषु प्रोज्वलन्ति ।

एव वेदविद्याया लक्ष्यं मानवजीवनस्यैवं विश्वजीवनस्य च रचनाया व्याख्या कर्त्तव्याऽस्ति । सृष्टिविद्यैव वेदविद्याऽस्ति । एवं सृष्टिविद्यानन्ताऽप्यस्ति । एवमेव वेदविद्या अप्यन्तहीनमस्ति ।

यस्य एतस्य कार्यं द्रक्ष्यामः, तत्रैवैकविश्वं संवृत्तमस्ति । अणुवीक्षणद्वारा भूतानां परिचय-करणं विज्ञानस्य पद्धतिरस्ति । परन्तु प्रत्येकभूते यत् प्राणतत्त्वमस्ति, तस्यदर्शनप्राप्तिः ऋषिपद्धत्यैव आसीत् । अस्मिन् जगति द्वौ पदार्थौ स्तः । एकं भूतं अपरं देवः । अक्षर प्राणतत्त्वमथवा जीवनतत्त्वं देव इति वदन्ति । मूलभूत एको देवोऽनेकरूपेण व्यक्तो भवति । वृद्धिरथवा बहुभावो तस्य निसर्गोऽस्ति । स आतपोऽस्ति । विश्वं तस्य प्रतिबिम्बमस्ति । सर्वत्र देवस्य शक्तेः दर्शनमेव वैदिकदृष्टिरस्ति । भूतानां नानात्व परिचयकरण विज्ञानपद्धत्या । नाना पदार्थेषु ओतप्रोतस्यान्तर्यामिसूत्रदर्शनमेवार्ष चक्षुषो विषय आसीत् । वेदविद्याया लक्ष्यम्–तदेवाविनाश्यक्षरचैतन्यगुणस्य च साक्षात्कार एव । वेदस्य रसो बाह्यशब्दे नास्त्यपित्वक्षरवेदतस्वेऽस्ति । तदेव देवत्वमस्ति यदमृतम्, सर्वत्रास्ति, देशकाल-बन्धनरहितमपि । तदेवाऽऽनन्दमयी चैतन्यसत्ताऽस्ति ।

वेदः पूर्णपट इवास्ति। तस्य कमपि सूत्रं कुत्रापि धृतं चेत् सर्वमपि वस्त्रं समीपमागच्छति। तदर्थं नारस्य मनसो वृद्धिङ्गताया जिज्ञासाया एकाग्रतायाश्च आवश्यकताऽस्ति। सूर्यचन्द्राकाश-पर्वत-समुद्राग्न्यश्वत्थ-वृक्ष-वनाश्वगो-वृषभादयो ये प्राणिनः पदार्था वा सन्ति, मन्ये ते सर्वेऽपि नागदन्तास्सन्ति। अस्या एव निदानविद्येति नाम।

शतपथे ग्रथितमस्ति–'गायत्री वा एषा निदामेन (१.४.१.३६) येयं सृष्टिरस्ति। सर्वस्यास्तस्या व्याख्या निदानविद्यया केवल गायत्रीमन्त्रे कर्तुं शक्यते, गायत्रीसम्पूर्णत्रयी विद्यायाः प्रतीकरूपा, वेदस्य च साररूपा अस्ति। इदं तथ्यमातौ शिथिलं दृश्यते। परं वैदिकदृष्ट्या विचार्यमाणे परिभाषेयं स्पष्टा भवति। गायत्रीशक्तिरक्षरतत्त्वस्य प्रतीकरूपाऽस्ति। सूर्यपृथिव्योः अव्यक्तव्यक्तयोः, समष्टि-व्यष्टयोः एकानेकयोश्च मध्ये या शक्तिर्निरन्तरं स्पन्दते सैव गायत्री अस्ति।

गायत्र्येव सुपर्णः, श्येन इव वास्ति। एकबार यद्यस्या अनुग्रहो भवेत् समष्टिगतामृताक्षरदेव-तत्त्वस्य प्रकाशो भवति। एनमेव वेदेषु सुपर्णस्य पतत्रस्य वा पक्षाणां सन्धमन कथयन्ति। अथ सुपर्णः सर्वेषामन्तर्व्याप्तस्य प्राणस्य जीवस्य वा स्पन्दन-रूपोऽस्ति। अयमेकोऽग्निरेव। अस्य प्रदीप्तज्वालेव सुपर्णः, श्येनपक्षी वाऽस्ति, यः स्वर्गाद्थवा समष्टिलोकात् मानवानां कृते अमृतघटमानयति। दिव्या-मृतजीवनस्य भूतले अवतरणमेव मायव्या सवितुर्वरेण्यस्य तेजस उपलब्धिरेव।

ज्ञानस्य कर्मणश्च यद्रूप प्रतिपलं जीवेन प्रकटं भवति सैव धीः। मनसा प्रज्ञया वा अथच प्राणेन शक्त्या वा कर्मणोऽभिव्यक्तिः भवति। उभयोर्मिलित्वा रुपमेव 'धियः' इति कथयन्ति। जीवनमायुष्य वा 'धियः इति प्रकट रूपमस्ति। 'धियः' इत्यस्य मूले सवितुर्देवस्य शक्तेर्दर्शनं यदि स्यात्तदा व्यक्तेः समष्टिमता देवत्वेन सह सम्बन्धः सन्नद्धो भवति। व्यक्तिः–मर्त्योऽस्ति देवश्चामृतः। मृत्यौ दुःखममृते। कर्मण उद्देशं तदेवास्ति यदानन्दरूपामृतास्वादनमेव।

एवमनेन विधिना केवलं गायत्रीमन्त्र एवं समस्तवेदविद्यायाः सारोऽस्ति। तस्य आरम्भे प्रणवस्य मात्रात्रयं वागथवा ज्ञानस्य प्रतीकमस्ति। एवं 'भूर्भुवः स्वः' एतास्तिस्रो व्याहृतयस्त्रयो लोकास्सन्ति। यदा वपने पात्रे वाक् प्राणमनसां रचना भवति। वेदविद्या बुद्धेः कुतूहलरूपा नास्ति। पाण्डित्यस्य विलासरूपाऽपि नास्ति। वेदविद्याया लक्ष्यं प्राणस्य चैतन्यामृततत्त्वस्य साक्षात्काररूप-मस्ति। अत एवोक्तं ऋग्वेदे—

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधिविश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते॥ १.१६४.३०॥

अर्थादुक्तमन्त्राणां यावत्यः ऋच सन्ति, तासां मूलस्रोतस्तस्मिन्नक्षरतत्त्वेऽस्ति यत् परमव्योम्नि चिदाकाशे वा स्थितमस्ति, तस्मादविनाशेऽक्षरादेकस्मादेव देवात् सृष्टिर्नानादेवानामुत्पत्तिर्भवति, एवं तस्यैव धरातले निवसन्ति च। यः तत् 'तत्' प्रणवरूपिणमक्षरं ज्ञातुमसमर्थो भवति तत्कृते शब्दमयीभ्यः ऋग्भ्यः किं फलं अभवत्। वयस्तत 'तत्' प्रणवरूपिणमक्षरं जानाति। तस्यैव समस्या ऋषिगोष्ठिषु वा सम्मिलन सफलं भवेत्। एव वेदविद्यायाः साफल्यं भवति यः स्वयं तत्त्वं ज्ञातुं प्राप्तुञ्च यतते।

वेदविद्याया मर्मतत्त्वं वा ज्ञातुं कतिपय विद्यानां ज्ञानमावश्यक भवति। यथा—१-यज्ञविद्या २-देवविद्या ३-लोकविद्या ४-प्राणविद्या ५-छन्दोविद्या ६-अग्निसोमविद्या ७-प्रजापतिविद्या ८-हृदयविद्या ९-त्रयीविद्या १०-अव्ययाक्षरक्षरत्रिपुरुषविद्या ११-पञ्चचितिविद्या १२-संवत्सर-विद्या १३-मनुविद्या १४-विगार्द्रविद्या १५-सदसद्विद्या १६-अमृतमृतविद्या १७-पर्यङ्कविद्या १८-अश्वत्थविद्या १९-निदानविद्या २०-सप्तहोतृविद्या २१-मधुविद्या २२-ऋतसत्यविद्या २३-कूर्मविद्या २४-वेनविद्या २५-स्वयम्भूविद्या २६-परमेष्ठिविद्या २७-अग्निविद्या २८-मित्रावरुण-विद्या ३०-अदिति-दिति विद्या,३१-गायत्री विद्या ३२-सवितृविद्या इत्यादयः।

वेदमन्त्रेष्वनेकाः परिभाषाः सन्ति। तासां सर्वासां समीचीनः कोशः सम्पादनीयो भवति। पारिभाषिकशब्दार्थज्ञानेनैव सृष्टिविद्याऽऽत्मसात्कर्तुं शक्यते। इदं महतो महीयान्' शास्त्रमस्ति। अस्य स्वस्य दुर्धर्षा सत्ताऽस्ति। अनवरतजिज्ञासया, स्वाध्यायेन ध्यानकृतसम्प्रश्नेन च वेदार्थसमस्याया उत्तरोत्तरं समाधान स्वयमेव भविष्यति। महतो मधुमज्ज्ञानसमुद्रस्यैक एव बिन्दुरेव मनुजस्य स्वीय ज्ञानमस्ति। मनस समाध्यनुसारेणैव वेदार्थज्ञानस्य क्षमता मानुषे समागच्छति। □

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा॥

वे माता और पिता अपने सन्तानों के पूर्ण वैरी है, जिन्होने उनको विद्या की प्राप्ति न कराई, वे विद्वानो की सभा में वैसे तिरस्कृत और कुशोभित होते हैं जैसे हंसो के बीच में बगुला।

(सत्यार्थप्रकाश-द्वितीय समुल्लास)

ऋग्वेद में 'खलु' निपात

—डॉ० राकेश शास्त्री, संस्कृत विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

ऋग्वेद में 'खलु' निपात का निश्चय अर्थ में प्रयोग हुआ है। निश्चयार्थक निपातों में प्रयोग की दृष्टि से इस निपात का तेरहवां स्थान है। यह निपात सम्पूर्ण ऋग्वेद में एक बार प्रयुक्त हुआ।[1] उस स्थल पर यह आद्युदात्त स्वरयुक्त मिलता है।[2]

यह निपात ऋग्वैदिक ऐतरेय ब्राह्मण में इक्कीस बार[3] शांखायन ब्राह्मण में पांच बार[4], ऐतरेय आरण्यक में नौ बार[5] तथा शांखायन आरण्यक में सात बार[6] प्रयुक्त हुआ है। शांखायन ब्राह्मण में यह निपात प्रायः अन्य निपातों के साथ प्रयुक्त हुआ है। वहां पर इसका अकेले प्रयोग विरल हो है। ऋग्वैदिक उपनिषदों में इस निपात का प्रयोग नहीं हुआ है।[7]

'खलु' निपात के विषय में यदि लौकिक संस्कृत साहित्य में प्रयोग एवं अर्थ की दृष्टि से विचार करें, तो हम देखते हैं कि वहां पर इस निपात का अत्यधिक प्रयोग हुआ है तथा वहां पर इस निपात के विविध अर्थ हैं। विविध कोशों में इसके 'निषेध, वाक्यालंकार, जिज्ञासा, अनुनय, वीप्सा, पदपूरण, निश्चय, प्रश्न, उत्तर, नियम, हेतु, सान्त्वना, मान' आदि अर्थों का उल्लेख मिलता है।[8]

प्राचीन आचार्यों की दृष्टि में 'खलु' निपात--

आचार्य यास्क ने निरुक्त में 'मा' निपात के विषय में उल्लेख करते हुए 'खलु' निपात के

---

१ ऋग्वेद—१०.३४.१४।

२ ह्यूम्स आफ दी ऋग्वेद—मैक्समूलर, चौखम्बा प्रकाशन, १९६५।

३ १-२, ६, ११, १५, २-३, ६, १५, ३-११, ३४, ४-५, १६, ५.२४, ३१, ६-११, २६, ३६, ८-१, १-२, ४।

४ २-९, ७-४, २३-५, २४-९, २९-१।

५ ३-१, ५, ५, ६, २, ५, ५, ५-१, ६।

६ ३-७, ५-१, ३, ६-१९, ७-३, २०, ८-९।

७ वैदिक पदानुक्रम कोश—विश्वबन्धु-१९४५।

८ अमरकोश—३.४.१८। युगलकोश—पृ० १९१। शब्दकल्पद्रुम—भाग.२, पृ० २४९।
वैजयन्तीकोश—पृ० २१६। वाचस्पत्यम्—पृ० २४७०। शब्दस्तोम महानिधि—पृ० १४७।
हलायुध कोश—पृ० २६४।

सम्बन्ध में भी उल्लेख किया है। उनके अनुसार यह निपात निषेध और पदपूरण अर्थ वाला है।[1] इस स्थल पर यह अवधारणीय है कि आचार्य यास्क ने 'खलु' निपात के अर्थों के उदाहरणों में वैदिक उदाहरणों का प्रयोग नहीं किया है।[2]

यद्यपि निरुक्त के व्याख्याकार आचार्य दुर्ग यास्क के इन अर्थों से सहमत प्रतीत होते हैं तथापि उन्होंने खलु के इन अर्थों के समुचित निरीक्षण के सम्बन्ध में भी उल्लेख किया है।[3] माधवभट्ट ने 'खलु' निपात की गणना अनर्थक निपातों में की है।[4] मैक्डानल ने इस निपात को बलाधायक निपातों की श्रेणी में रखा है और इसके 'वस्तुतः', 'कृपया', 'सचमुच' अर्थ किये हैं।[5]

सायणाचार्य ने ऋग्वेद भाष्य में इस निपात को पदपूरण माना है।[6] स्कन्दस्वामी का प्रस्तुत मन्त्र का भाष्य अनुपलब्ध है। स्वामी ब्रह्ममुनि, वेंकटमाधव एवं मुद्गल ने इस स्थल पर 'खलु' निपात का कोई अर्थ नहीं किया है। ऋग्वेद के सप्तम मण्डल के ६२वें सूक्त के द्वितीय मन्त्र तक स्वामी दयानन्द का भाष्य उपलब्ध है। इसलिये उसमें भी इस मन्त्र के भाष्य का अभाव है।

'खलु' निपात के पदपूरण प्रयोग पर विचार—

अब देखना यह है कि 'खलु' निपात का उस स्थल पर वर्णनीय विषय के सन्दर्भ में किस अर्थ में प्रयोग हुआ है अथवा उस स्थल पर उसका प्रयोग पदपूरण ही है। ऋग्वेद का यह विचारणीय स्थल दशम मण्डल का है—

मित्रं कृणुध्वं खलु मृळता नो मा नो घोरेण चरताभि धृष्णु ।
नि वो नु मन्युर्विशतामरातिरन्यो बभ्रूणां प्रसितौ न्वस्तु ॥[7]

---

१ मा प्रतिषेधे—खल्विति च—अथापि पदपूरणः। निरुक्त-१.५.८,९,१०।

२ खलु कृत्वा, खलु कृतम्, एवं खलु तद्बभूवेति, निरुक्त-वही।

३ देशभाषा व्यवस्थयैवञ्जातीया न मुपेक्षितव्य क्वाचित् प्रयोगः। निरुक्त दुर्गटीका। १.५.६।

४ ······खल्विदादध सीमुकम्। स्यु अनर्थकाः। ऋग्वेदानुक्रमणी। ३-१-१४॥

५ वैदिक व्याकरण—मैक्डानल—अनु० सत्यव्रत शास्त्री पृ० ३००।

६ खलु इति पदपूरणः। ऋग्वेद-सायण भाष्य-१०.३४.१४।

७ ऋग्वेद-१०.३४.१४।

प्रस्तुत स्थल पर अक्षों को सम्बोधित करके जुआरी का कथन है तथा 'खलु' निपात का मन्त्र के प्रथम चरण में तृतीय स्थान पर 'कृणुध्वम्' क्रिया पद के पश्चात् प्रयोग हुआ है। आचार्य सायण ने उसे पदपूरण मानते हुये मन्त्र की व्याख्या इस प्रकार की है—

हे अक्षों ! तुम हमारे साथ मैत्री करो और हमें सुखी बनाओ।[1] प्रस्तुत स्थल पर 'खलु' निपात लोट् लकार मध्यम पुरुष के तिङन्त पद 'कृणुध्वम्' के पश्चात् प्रयुक्त हुआ है। 'कृणुध्वम्' पद का ऋग्वेद में अन्यत्र भी प्रयोग उपलब्ध होता है।[2] प्राय उन सभी स्थलों पर यह तिङन्त पद किसी कार्य की विधि के साथ-साथ वक्ता के भाव प्राबल्य को भी सूचित करता है। तत्सम्बन्धित स्थलों में से अधिकांश स्थलों पर उसका प्रयोग प्रकृष्टता के द्योतक 'प्र' उपसर्ग के साथ हुआ है।[3]

अत' यहां जुआरी के कथन में भाव का प्राबल्य को सूचित करने के लिए 'खलु' निपात का निश्चय अर्थ करके मन्त्रार्थ इस प्रकार करना उचित प्रतीत होता है—[4]

हे अक्षो ! आप निश्चय ही हमारे साथ मित्रता कीजिये और हमें सुखी बनाईये।

अथवा यहां पर खलुनिपात से जुआरी का पासों के प्रति अनुनय या अनुरोध का भाव भी प्रकट होता है, तब मन्त्रार्थ इसप्रकार करना उचित होगा—

हे अक्षों, आप कृपया हमारे साथ मित्रता कीजिये और हमें सुखी बनाईये।

ऋग्वेद के इस मन्त्र में प्रयुक्त 'खलु' निपात का मैक्डॉनल ने भी 'कृपया' अर्थ किया है। उनके मत में— प्रस्तुत स्थल पर 'खलु' निपात जुआरी के अनुनय भाव को प्रकट करता है।[5]

पाणिनि ने भी अष्टाध्यायी में लोट्लकार को विधि, निमन्त्रण, अनुरोध आदि को प्रकट करने वाला माना है।[6] क्योंकि प्रयुक्त स्थल पर 'खलु' निपात लोट्लकार के क्रियापद के तुरन्त पश्चात् प्रयुक्त हुआ है। इसलिये यहाँ खलु को पदपूरण न मानकर उसे अनुरोध, अनुनय अथवा निश्चय अर्थ में मानना उचित प्रतीत होता है।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि ऋग्वेद में एक बार प्रयुक्त 'खलु' निपात का पदपूरण प्रयोग उचित प्रतीत नही होता। अपितु उसे यहां सार्थक मानना ही उचित है।

वस्तुत' सायण प्रभृति भाष्यकारों ने अपने भाष्यों में निपातों का अर्थ करते समय पूर्ण न्याय नही किया है। इसकी पुष्टि 'खलु' निपात के अर्थ निर्धारण से भी होती है।

१ हे अक्षाः यूयं मित्रं कृणुध्वम् अस्मासु मैत्रीं कुरुत……नः अस्मान् मृडत सुखायत च।
(सायण—भाष्य—वही।)

२ ऋग्वेद—१.७७.२, ४.३.१, ५.४१.६, ७.३.१, १०.६.५।

३ ऋग्वेद ७.३६.७, ३१.१०।

४ मैक्डानल ने खलु निपात को बलाधायक निपात माना है।

५ वैदिक व्याकरण—मैक्डानल—अनु० सत्यव्रतशास्त्री पृ० ३००।

६ विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्ट संप्रश्न—प्रार्थनेषु लिङ्—लोट्च, अष्टाध्यायी ३.३.१६१ एवं ३.३.१६२।

सच्चे गुरु तेगबहादुर

डॉ० विनोदचन्द्र सिन्हा
अध्यक्ष, प्रा०भा० इतिहास विभाग
गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

आज से लगभग साढे तीन सौ वर्ष पूर्व सिखो के नवम् गुरु तेगबहादुर का जन्म सम्वत् १६७६ मे अमृतसर मे हुआ। आपके पिता सिखो के षष्ठम् गुरु हरिगोविन्द जी महाराज थे। बालक के लक्षण को देखकर गुरु महाराज ने कहा था कि यह बालक बडा ही शूरवीर और धर्मात्मा होगा। पिता की यह भविष्य वाणी सही उतरी।

गुरु हरिगोविन्द जी ने तेगबहादुर की शिक्षा के लिए विद्वान् शिक्षक नियुक्त किये। बालक की बुद्धि ऐसी तिक्ष्ण थी कि आवश्यक विद्या उन्होने आठवी मे ही सीख ली। शस्त्र विद्या पिता ने स्वय सिखाई। इसका परिणाम यह हुआ कि छोटी अवस्था मे ही गुरु तेगबहादुर अपने पिता के साथ युद्धभूमि को जाने लगे। सम्वत् १७०१ मे हरिगोविन्द जी महाराज ने गुरु तेगबहादुर को बकाला नगर मे जाकर निवास करने की आज्ञा दी। पिता की आज्ञा को शीरोधार्य करते हुए गुरु तेगबहादुर बकाला चले गये और वहा एक निर्जन स्थान मे ईश्वर का भजन करने लगे। किन्तु गुरु-गद्दी न चाहते हुए भी एक चमत्कारी घटना के कारण ऊन्हे गुरु-गद्दी पर आसीन होना पडा।

अष्टम गुरु हरिकृष्ण जी दिल्ली मे जब परलोकगमन करने लगे तो सिखो ने पूछा—महाराज, आपके पीछे अब किसको गुरु मानना चाहिए। गुरुमहाराज ने किसी विशेष व्यक्ति का नाम न लेकर केवल इतना ही कहा—गुरु बाबा बकाले। गुरु-महाराज के इस वचन को सुनकर सोढी-वश मे गुरु-गद्दी के लिएविवाद उठ खडा हुआ और बकाला नगर मे बाइस गद्दिया स्थापित हो गयी सच्चे सिख इस इस विवाद से बडे दुःखी थे। अचानक एक ऐसी घटना घटित हुई कि नकली गुरुओ का विकास हो गया और सच्चे गुरु के रुह मे गुरु तेगबहादुर जी अवतारित हुए।

कथा प्रचलित है कि पजाब का एक सिख सेठ मक्खणशाह देश-देशान्तरो मे व्यापार के लिए जाया-आया करता था। एक बार उसका पोता जो नाना प्रकार के बहुमूल्यो वस्त्रो से लदा था डूबने लगा। किसी प्रकार पोते को न बचता देखकर सेठ ने गुरु महाराज का ध्यान किया और निश्चय किया अगर मेरा पौत्र बच बच जायेगा तो मैं गुरु-गद्दी पर पाच सौ स्वर्ण मुद्रा भेट करुगा। डूबता हुआ पौत्र

बच गया। सेठ के दिल पर इस घटना का बड़ा प्रभाव पड़ा। गुरु-दर्शन के लिए वह बकाला नगर आया। यहां पहुँचने पर उसे मालूम हुआ कि गुरु के स्थान पर बाईस गुरु बन बैठे हैं। बहुत विचार करके उसने निश्चय किया कि प्रत्येक गुरु को पांच-पांच स्वर्ण मुद्रा भेंट दूं और जो गुरु मेरे बताये बिना स्वयं ही स्वर्ण मुद्रा मांगेगा वही असली गुरु होगा। किन्तु बाईस गुरुओं में से किसी ने भी पांच सौ स्वर्ण मुद्रा न मांगी। सेठ जब निराश होकर लौटने लगा तो किसी सिख ने कहा–तुम असली गुरु तक तो पहुँच ही न पाये वह तो गुप्तरूप से एक निर्जन स्थान पर रहता है। वही तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करेगा।

सेठ मक्खणशाह आशा की एक नई किरण लेकर गुरु तेगबहादुर जी की सेवा में उपस्थित हुआ। बड़ी श्रद्धा से प्रणाम करके पांच स्वर्ण मुद्रा भेंट की। इस पर गुरु तेगबहादुर जी मुस्कराये और कहने लगे जिस समय हमने तुम्हारे पोते को स्कन्ध पर उठाकर बचाया था तो तुमने पांच सौ स्वर्ण मुद्रा देने की प्रतिज्ञा की थी। अब तुम केवल पांच स्वर्ण मुद्रा दे रहे हो इसका क्या कारण है। गुरु वाणी सुनकर सेठ का रोम-रोम सिहर उठा वह बोला–हे सच्चे गुरु मैं आपको प्रणाम करता हूं। आपकी ही खोज में मैं दर-दर भटक रहा था। यह कहकर वह गुरु चरणों में नत हो गया। इस घटना के बाद हो सभी नकली गुरु उसी प्रकार से अस्त हो गये जैसे सूर्योदय पर सारे तारे अस्त हो जाते हैं।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के—

कुलपति जी की र्बामंघम यात्रा का संक्षिप्त विवरण—

प्रस्तुतकर्त्ता—**डॉ० राकेश शास्त्री, संस्कृत विभाग**
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा वरमिंघम में आयोजित १३ वें राष्ट्रमण्डलीय विश्वविद्यालय सम्मेलन में भाग लेने के लिये ११ अगस्त की शाम को वरमिंघम पहुँचे। तथा १२ १३ अगस्त को विश्वविद्यालय के केम्पस में सम्मेलन में भाग लिया। इस सम्मेलन में लीवर ह्यूम रिपोर्ट पर बहस हुई। इस रिपोर्ट में ब्रिटेन के विश्वविद्यालयों को फिर से दो वर्ष का डिग्री कोर्स अपनाने के लिये प्रेरित किया गया था। इस विषय पर गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय के कुलपति जी ने अपने विचार दो वर्ष के पाठ्यक्रम के पक्ष में प्रस्तुत किये। उनके शब्दों मे—"यदि तीन वर्षों में छः-छः मास विश्वविद्यालय बन्द रहे तो तीन वर्ष का लाभ क्या हुआ। यदि दो वर्ष मे विद्यार्थी २००-२५० दिन काम करे तो अधिक लाभ होगा।"

इसी सम्मेलन में विश्वविद्यालय के अनुसंधान कार्यो को जनसाधारण तक पहुँचाने की दिशा में विश्वविद्यालय के कर्तव्यों पर भी चर्चा की गयी। इस सन्दर्भ मे कुलपति जी ने गुरुकुलीय प्रणाली, कार्यविधि के पक्ष में अपने विचार व्यक्त किये।

१५ अगस्त को वरमिंघम विश्वविद्यालय के भव्य हाल में सर ऐलिक मेरिसन, अध्यक्ष राष्ट्रमण्डल विश्वविद्यालय के स्वागत भाषण से कान्फ्रेन्स का शुभारम्भ हुआ। इस कान्फ्रेंस के मुख्य अतिथि राष्ट्रमण्डल के जनरल सेक्रेट्री श्रीदत्त रामफल थे। उन्होंने अपने भाषण में विश्व की वर्तमान समस्याओं पर प्रकाश डालते हुये विश्वविद्यालयों द्वारा समाज में बौद्धिक और नैतिक नीवें.प्रतिष्ठित करने और सार्वभौम भविष्य के निर्माण के लिये प्रबुद्ध स्नातकों को तैयार करने की आवश्यकता पर बल दिया। भारतीय प्रतिनिधियों द्वारा निरन्तर प्रशिक्षण और ग्राम सुधार की गोष्ठियों की चर्चा की गयी। इस कान्फ्रेन्स का मुख्य विषय "तकनीकी आविष्कार और विश्वविद्यालयों की भूमिका" था। इसी विषय को लेकर पांच गोष्ठियों का निर्माण किया गया। १—तकनीकी आविष्कार के सामाजिक परिणाम। २—सर्वाङ्गीण ग्राम सुधार में विश्वविद्यालय की भूमिका ३—विश्वविद्यालयों और उद्योगों का परस्पर सहयोग ४—तकनीकी ज्ञान का विकास और प्रसार ५—निरन्तर शिक्षा। इनमें से श्री हूजा जी ने दूसरी और पांचवी गोष्ठियों में भाग लेते हुए ग्रामीण सुधार के सम्बन्ध में गुरुकुल कांगड़ी

विश्वविद्यालय की महत्वपूर्ण भूमिका का उल्लेख किया। इसके अतिरिक्त इस गोष्ठी में मदुराई गांधी ग्राम रूरल इन्स्टीट्यूट के कुलपति डॉ० आराम ने अपना पत्र पढ़ा तथा रांची के कुलपति श्री धान ने अपने विचार प्रकट किये।

निरन्तर शिक्षा की आवश्यकता पर बल देते हुये कुलपति जी ने भारत के ऋषि मुनियों द्वारा प्रतिपादित शिक्षा प्रणाली पर प्रकाश डालते हुये ऋषि दयानन्द की गुरुकुलीय शिक्षा प्रणालो की विस्तार से चर्चा की। और कहा कि—"शिक्षा का लक्ष्य विद्यार्थी में स्वाध्याय की निरन्तर शिक्षा की जिज्ञासा उत्पन्न करना होना चाहिये। विश्वविद्यालय का कार्य केवल डिग्री प्रदान करना ही नही है। इसी प्रसंग में निरन्तर शिक्षा के साधनों पर प्रकाश डालते हुये रेडियो सिनेमा वीडियो, टेपरिकार्ड दूरदर्शन आदि के द्वारा ग्रामीण जनता को निरन्तर अनुसन्धान की गई नयी-नयी तकनकियों से शिक्षित करने की आवश्यकता पर बल दिया। और कहा—राष्ट्र के राजनैतिक नेताओ, अफसरों, कर्मचारियों, कारखानेदारों, किसानों, मजदूरों के पास अपार शक्ति है, आवश्कता है दिशा निर्देशन की ध्रुवमार्ग दिखाने की यह है कार्य आज के युग में विश्वविद्यालयों का।"

हेमवर्ग के डाक्टर जोगेन्द्र मल्होत्रा के सौजन्य से लूनीवर्ग की ईस्ट एकेडमी में चल रहे सेमीनार में वरमिंघम के १३ वे कामन वेल्थ विश्वविद्यालय के सम्मेलन के निष्कर्षों एवं तीसरी दुनियां की शिक्षा समस्याओं पर आयोजित अध्यापकों की संगोष्ठी मे कुलपति जी ने भाग लिया।

इस संगोष्ठी में इन्होंने गंगा योजना, हिमालय योजना, गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय का लक्ष्य भारत के विरुद्ध हो रहे मिथ्या प्रचार आदि के सम्बन्ध में प्रश्नों का उत्तर देते हुए अपने ओजस्वी एवं तर्क पूर्ण विचार प्रस्तुत किये। जो वहां के लोगों द्वारा अत्यधिक पसन्द किये गये। इसी प्रसंग मे भारतीय एव जर्मन बुद्धिजीवि वर्ग के परस्पर सहयोग की भी आवश्यकता पर कुलपति जी द्वारा बल दिया गया।

इसके साथ ही कुलपति श्री हूजा जी की लंदन के प्रधान प्रोफेसर श्री भारद्वाज के साथ बात-चीत हुई। उनके साथ के लंदन ओरियन्टल स्कूल भी गये। इस विषय में एक बात का उल्लेख कुल-पति जी ने विशेष रूप से किया है कि जिस मौहल्ले मे प्रोफेसर मल्होत्रा रहते हैं वहां के चर्च के लिये सभी मौहल्लावासियों को जबरन टैक्स देना पड़ता है और यह आय का अधिकार के रूप में होता है। इस आय से ही चर्च अपनी विचारधारा प्रसारित करने में सफल होता है। इसके अतिरिक्त चार भषाओं में प्रकाशित बाइबिल के उद्धरणों से युक्त एक ग्रंथ भी इन्होंने देखा। यह सब देखकर कुल-पति जी के मन में आया कि गुरुकुल कांगडी का आर्यसमाज भी इस प्रकार का कार्य अपने हाथ मे ले सकता है जब ऐसा हो सकेगा तभी हम ऋषि के ऋण से अऋण हो सकेंगे।

आकाशवाणी नजीबाबाद से प्रसारित वार्ता—

बदलते मूल्य, बदलते रिश्ते और पीढ़ी का अन्तराल

—बलभद्र कुमार हूजा

यह ठीक है कि बदलते जमाने के साथ सामाजिक मूल्य भी बदलते हैं। लेकिन यह स्वीकार करना होगा कि समाज के लिए कुछ मूल्य शाश्वत है जिनके त्यागने से समाज में अव्यवस्था पैदा हो जाती है।

आजकल पीढियों के अन्तराल की बात चलती है। मैं इस विचार को एक मिथ अथवा मिथ्या की संज्ञा देता हूं। लगता है कि नई और पुरानी पीढ़ी मे अन्तराल है, लेकिन जो कुछ भी हो रहा है वह सामाजिक विकास की ही तो प्रक्रिया है।

यदी सही दृष्टि से देखा जाय तो स्पष्ट है कि एक पीढ़ी सड़क बनाती है तो दूसरी उस सड़क पर चलती हुई आगे बढ़ाती है। या दूसरी उपमा दी जाय तो यह कहना होगा कि नई पीढी के कन्धों पर चढ़कर क्षितिज की नई दूरियों को झांकती है। इसलिए नई पीढी और पुरानी पीढ़ी में अन्तर प्रतीत होता है। लेकिन यह सत्य कि है अनन्त की खोज ही साधना ही।

जो आज बूढा है वह कल नवयुवक था और उस वक्त उसने अपनी पूर्व की पीढी को चुनौती दी थी जैसे कि आज की नई पीढी उसको चुनौती देती है। बुजुर्गों को यह बात अखरती तो है लेकिन उनको जब अपनी जवानी की याद दिलाई जाय तो वह स्वीकार करेंगे कि उन्होंने भी ऐसी ही हरकतें की थी, जो उनके बुजुर्गों को नापसन्द रही होगी। इन्हें हरकतों की संज्ञा देना भी गलत होगा। यह हरकतें तो दैवी जिज्ञासा का क्रियात्मक रूप है, जिन्हें महात्मा गांधी ने सत्य के प्रयोग कहा है।

अन्त में क्या मिलेगा यह तो कहा नहीं जा सकता ? लेकिन इतना निश्चिय है कि जबसे मानव का इस पृथ्वी पर अवतरण हुआ है तब के यह खोज जारी है और अन्त काल तक जारी रहेगी।

यह ठीक है कि आज मानव जिस दिशा में जा रहा है वह इतनी भयानक है कि उसका अन्त प्रलय हो सकता है। लेकिन फिर मानव में आत्मरक्षा की जो भावना है उस पर विश्वास करते हुये कहा जा सकता है कि मानव में सद्बुद्धि की प्रेरणा प्रबल होगी और वह विनाश से बचता रहेगा।

जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूं केवल आज की ही युवा पीढ़ी पुरानी पीढ़ी से विद्रोह करती हो, ऐसी बात नहीं है। विद्रोह करना और नई लकीरों पर चलना तो तरुणाई का सदा से ही स्वभाव रहा है।

प्रह्लाद भी इसी तरह का एक क्रान्तिकारी युवक था। उसके पिता हिरण्यकश्यप ने जब चाहा कि उसका पुत्र उसे भगवान् के रूप मे स्वीकार करे तो प्रह्लाद ने उसके विरुद्ध विद्रोह किया। फलस्वरूप, हिरण्यकश्यप ने प्रहलाद को भांति-भांति की यातनायें दी। कभी ऊंचे पहाड़ से नीचे गिराया, कभी होलिका के साथ उसे जलती हुई आग में बिठाया और कभी गरम खम्भे के साथ बांधा, लेकिन प्रहलाद सत्य पर अडिग रहा।

इसी प्रकार उपनिषदों में नचिकेता का प्रसंग आता है। जब उसके पिता ने ब्राह्मणों को बूढ़ी गायें देकर टालना चाहा तो नचिकेता ने कहा कि मुझे किसको दान में दोगे। बालक के बार-बार आग्रह करने पर उसका पिता क्रुद्ध होकर बोला, तुझे यमराज को दूंगा। पिता क्रोध मे कह तो गया, किन्तु पिता की प्रतिज्ञा भंग न हो, इस हेतु नचिकेता यमराज के पास चला गया। आगे अलग प्रसङ्ग शुरु होता है, लेकिन कहने का तात्पर्य यह है कि युवक अपने वृद्धों की हर बात पर, हर हरकत पर नजर रखते हैं, और यदि वृद्ध चाहते है कि उनमें अन्तराल न हो तो उन्हें सदैव सजग रहना होगा, सत्याचरण करना होगा।

वास्तव में यह तरुणाई का गुण है कि वह अन्याय, अज्ञान, अभाव के विरुद्ध युद्ध करती है और इसी में समाज और राष्ट्र का हित निहित है।

वक्त आने पर तरुणाई का ओज शिथिल हो जाता है। फिर नई तरुणाई अंगड़ाई लेती है और इस प्रकार समाज को आगे बढ़ाने में अपना योगदान देती है।

आज के युग में हम जो नाटक देखते हैं वह भी कुछ इसी प्रकार का है। जब युवा पीढ़ी को व्यवहारिकता के नाम पर सत्य के मार्ग से हटते, डिगते देखती है तो उसकी आत्मा को क्लेश होता है और वह विद्रोह करती है। यदि इस अवस्था में उसको सही मार्गदर्शन मिल जाय तो वही युवाशक्ति समाज और देश की उन्नति में लग जाती है, अन्यथा वही शक्ति समाज के लिए घातक सिद्ध होती है।

मेरी पीढ़ी भाग्यशाली थी कि उसे दयानन्द, श्रद्धानन्द, गोखले, तिलक, गांधी, लाजपतराय, सुभाष, टैगोर और नेहरु जैसे उच्च आदर्शों वाले कर्मठ नेताओं का नेतृत्व प्राप्त था। उनके नेतृत्व में उस वक्त की तरुण पीढ़ी ने समृद्ध ब्रिटिश साम्राज्य से, जिसके शासन में कभी सूर्य अस्त नहीं होता

था, न केवल टक्कर ली, अपितु देश को उससे मुक्ति भी दिलाई और उसके फलस्वरूप विश्वभर में आजादी की ऐसी लहर फैली कि कुछ ही वर्षों में विश्व के अनेक राष्ट्र साम्राज्यवाद के चंगुल से मुक्त हो गये ।

हमारी पीढी के सामने गरीबी के दानव से छुटकारा पाने की समस्या भी थी । इसके समाधान हेतु पंचवर्षीय योजनाये बनी । जिसके फलस्वरूप कुछ प्राप्ति हुई । भारत मे बिजली नहर योजनायें बनी, हरित क्रान्ति हुई, कारखाने लगे । भारत की गणना संसार के अग्रणी देशों में होने लगी । लेकिन जनसाधारण की गरीबी की समस्या आज भी ज्यों की त्यों बनी है ।

निसन्देह इसके हल के लिये पुरानी और नई पीढी दोनों को सोचना होगा । इसी सन्दर्भ में शासन ने २० सूत्रीय कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार की है ।

इसके अन्तर्गत गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय ने कांगडी ग्राम को प्रयोगशाला के रूप में अपनाया है और विश्वविद्यालय के अधिकारी, जिला अधिकारी एव बैंक के अधिकारी मिलकर यदा-कदा यहा ग्राम सभाओ का आयोजन करते हैं, जिसमे बडे बूढे सब मिलकर उन्नति के पथ की खोज करते हैं और इसका यह परिणाम है कि जहां आज से दो वर्ष पहले अभाव और अन्धेरा था आज बस गाँव के अन्दर पक्की सड़के, कुआं, निर्बल आवास, पुस्तकालय, गोबर गैस आदि सुविधाये प्राप्त है । न्यू बैंक आफ इण्डिया एव स्टेट बैंक आफ इण्डिया ने ग्रामवासियों की आर्थिक उन्नति के लिये लगभग १,००,००० रु० कर्जा दिया है और परिणामस्वरूप आज उनमें से कईयों की ३०-४० रु० प्रतिदिन तक आमदनी बढी है ।

अलबत्ता हम एक महत्वपूर्ण कार्य मे सफल नहीं हो पाये और वह है वृक्षारोपण । इसका कारण चकबन्दी होना बताया जाता है । क्योंकि ग्रामवासियों का यह निश्चय नहीं था कि भूमि का कौन सा टुकड़ा किसके हिस्से में आयेगा और कौन सा किसके । फलतः उन्हें वृक्षारोपण में दिलचस्पी नहीं रही ।

एक और दिशा में भी हमें पर्याप्त सफलता नहीं मिल पाई । और वह है ग्रामीण महिलाओं में नव चेतना का जागरण । इसका कारण हमारे पास महिला कार्यकर्त्ताओं का अभाव था ।

शुरू में ग्रामवासी अचम्भित थे कि यह क्या हो रहा है । लेकिन अब उनमें विश्वास पैदा हो रहा है । उनकी आंखों में चमक नजर आती है । गांव में उक्त जितनी सफलतायें प्राप्त हुई उनमें गांव के नवयुवक मंगल दल का सक्रिय सहयोग रहा । कहने का अभिप्राय यह है कि युवा शक्ति और वृद्ध शक्ति के पारस्परिक समन्वय से ही यह सब सफलताये प्राप्त हुई है ।

इसी सन्दर्भ में उपनिषद में एक और कथा याद आती है—

एक जंगल में एक अन्धा और एक लंगड़ा बैठे हुए थे। जंगल में आग लग गई। एक देख नहीं सकता था तो दूसरा चल नहीं सकता था। दोनों ने अपनी-अपनी शक्तियों का समन्वय किया। लंगड़ा अन्धे के कन्धे पर बैठ कर उसे रास्ता बताने लगा और कुछ ही देर में वे जंगल की आग की आग पहुँच से बाहर हो गये।

यही रिश्ता वृद्ध पीढ़ी और तरुण पीढ़ी का है।

यह तो निर्विवाद है कि टकराव चाहे पीढ़ियों का हो, व्यक्तियों का हो, चाहे राष्ट्रों का हो, यह तभी होता है, जब आपसी स्वार्थ टकराते हैं। टकराव चाहे एक ही पीढ़ी का हो या विभिन्न पीढ़ियों का हो अन्तराल तो पैदा होगा ही।

हमारे आजकल के बुजुर्ग नेताओं का ही उदाहरण लीजिये। सभी एक ही पीढ़ी के है। लेकिन उनमें वैचारिक और मानसिक अन्तराल सर्वविदित है।

इसके विपरीत गांधी जी और नेहरु दो विभिन्न पीढ़ियों के थे लेकिन उनमें कोई टकराव नहीं था।

सत्य ही कहा कि पुत्र और शिष्य की उन्नति देखकर हरेक माता-पिता और गुरु को गर्व होता है और सभी माता-पिता और गुरु चाहते हैं कि उनके पुत्र तथा शिष्य उनसे भी आगे बढ़े और उनमें किसी प्रकार का टकराव न हो।

इसीलिए तो हमारे वैदिक ऋषियों में वानप्रस्थ की व्यवस्था की थी ताकि गृहस्थ आश्रम की समाप्ति पर प्रत्येक प्रबुद्ध नागरिक सांसारिक कार्य अगली पीढ़ी के हवाले करते हुये वानप्रस्थ में प्रवेश ले।

इसके साथ ही यह भी अपेक्षित था कि वानप्रस्थी ही गुरुकुलों को चलायें जिससे वे अपने लम्बे तजुर्बे का उपयोग गुरुकुलों में कर सकें। दादा और पोते का, साठे और आठे का सहचर्य गुरुकुलों में ही सम्भव हो सकता है।

इसी प्रसंग में यह भी जिक्र करना चाहूंगा कि जब शिष्य गुरुकुल में प्रवेश करता था तो उसे ३ रात्रि गुरु के गर्भ में व्यतीत करनी होती थी।

सुविख्यात मनीषी डा० सत्यव्रत सिद्धान्तालङ्कार के अनुसार रात्रि का अभिप्राय अन्धेरे से है। वेद कहता है 'तमसो मा ज्योतिगमया'। मुझे अन्धेरे से प्रकाश की ओर ले चलो। गुरु प्रकाश है—

ब्रह्मचारी तीन प्रकार के अन्धेरे से घिरा है, शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक। जब गुरु के कुल में उसका प्रवेश होता है, तो गुरु उसका उक्त तीन प्रकार का अन्धेरा दूर करने का प्रयत्न करता है।

गुरु को यम अर्थात् मृत्यु भी कहा है। ऊपर मैंने नचिकेता की यमाचार्य के पास जाने का जिक्र किया। जब शिष्य यम के पास जाता है तो मर जाता है, अर्थात् उसके सब प्रकार के पूर्व संस्कारों का अन्त हो जाता है। वह अपने पूर्वाग्रह समाप्त करके नये संस्कार ग्रहण करने को उद्यत होता है एव पूर्णतया गुरु के अकुश मे रहता है। हा, इसके साथ गुरु का उत्तरदायित्व भी बढ जाता है। गुरु को सच्चे मानो में गुरु, आचार्य, सदाचारी बनना होगा। तभी वह शिष्य को सर्वांगीण शिक्षा दे पायेगा। अब आप सोचिये कि जो शिष्य १६-१७ वर्ष तक गुरु के गर्भस्थ रहे, तो उस शिष्य और गुरु मे अन्तराल कैसा ?

आज यदि अन्तराल के लक्षण यत्र-तत्र दिखाई देते है तो उसका एकमात्र कारण यह कि गुरु अपने शिष्य को गर्भस्थ नही करता। उससे शिष्यवत् व्यवहार नही करता। पिता अपने पुत्र से पुत्रवत् व्यवहार नही करता। गुरु एव अपने पिता अपने शिष्य एव पुत्र को अपने से बेहतर समझते है। पिता अपने व्यवसाय मे तल्लीन न रहकर अपने पुत्र की देखभाल के लिये समय नही निकाल पाता। अतः पिता और पुत्र में, गुरु-शिष्य मे अन्तराल तो होगा ही।

प्राचीन काल मे पिता अपने पुत्र को आशीर्वाद देता था—

अंगादंगाद् सम्भवसि हृदयादधि जायसे,
आत्मवं पुत्र नमासि त्वम् जीव शरदः शतम्।

अर्थात्– हे पुत्र, तू मेरे अग-अग से बना है, मेरे हृदय से पैदा हुआ है। तू मेरे जैसा ही है। तू सौ वर्ष जी।

आज की पीढी के सम्मुख राष्ट्र निर्माण की, गरीबी हटाने की चुनौती विद्यमान है। इसके लिये भागीरथ पुरुषार्थ की और आपसी सहयोग की आवश्यकता है। यह तभी सम्भव है जब ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, सन्यासी, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अपने कर्म का यथा समय और यथाशक्ति पालन करे।

हमारे ऋषियों ने वर्णाश्रम व्यवस्था की स्थापना ही इसीलिये की थी कि समाज के सभी अंग संगच्छध्व की मेल मिलाप की भावना से कार्य करे। उनमे आपसी टकराव की कोई सम्भावना ही न रहे।

□□□

गतांक से आगे—

ईश्वरीय ज्ञान का प्रकाश कैसे हुआ

—डॉ॰ रामेश्वर दयाल गुप्त M.A. Ph. D.

इस विषय में दो दृष्टिकोण हैं। एक को प्रसिद्ध विद्वान् प० भगवतदत्त रिसर्च स्कालर एवं वैद्य गुरुदत्त ने शाश्वत–वाणी पत्रिका में कहा है— (१) इस मान्यता के प्रारम्भ में ही भाषा केवल प्रतीकात्मक तथा एकाक्षरीय या दो अक्षरीय थी।

[स वा एकाक्षर द्वयक्षराण्येव ॥ शतपथ ११। १। ६। ४] वैदिक वाक् के बारे में महाभारत शान्तिपर्व २२४। ५५ का निम्न उदारहण समीचीन है।

अनदि निधन्ना नित्या वा गुत्सृष्टा स्वयंभुवा।
आदौवेदमयी दिव्या यत: सर्वा: प्रवृत्य:॥

यह वाक् मानव को उत्पत्ति के बहुत पहिले अन्तरिक्षस्थ तथा द्युलोकस्थ देवों और ऋषियों अर्थात् ईश्वर की भौतिक विभूतियों द्वारा प्रकट हो चुकी थी। ओम्, अथव्याहृतियां और मन्त्र हिरण्यगर्भ आदि से तन्मात्रा रूप वागिन्द्रिय द्वारा उच्चरित हो चुके थे। यह वाक् क्षीण नही हुई, परम व्योम आकाश में स्थिर रही। जब मनुष्य आया वह देवी वाक् उसमे प्रविष्ट हुई। उसे उसने सुना। इसलिये श्रुति कहते हैं।

देवी वाचमजनयन्त देवा: (ऋ ८। १००। ११)। पुन: "सुक्तमिव्व तितुउना पुनन्तों यत्र धीरा मनसावाचमक्रत।" देवी वाक् को ऋषि ने छलनी में सत्तू छानने के समान पृथक् किया। इसी को होमर ने कहा है—Language of gods and men.

दूसरा मत महात्मा नारायण स्वामी प्रभृति का है, जिसके अनुसार मनुष्य पहिले होता है, फिर ज्ञान आता है। वे अपने दृष्टिकोण के समर्थन में निम्न मन्त्र उपस्थित करते हैं।

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयंदधाना:।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्प्रेणा तदैषां निहितं गुहावि:। (ऋग्वेद १०। ७१। १)

अर्थात् ईश्वर (वेद) वाणी का स्वामी है। वह वाणी ऋषियों के हृदयों में उत्पन्न होती है। उसी वाणी को ऋषि अपने हृदय से निकालकर उसके द्वारा वस्तुओ के नामादि का उच्चारण करते हैं।

इस मंत्र से स्पष्ट हो जाता है कि ज्ञान प्राप्त होने की प्रणाली यह है कि ज्ञान वाणी के साथ ऋषियों के हृदय में प्रकट होता है और वे ज्ञान के ग्राहक ऋषि उसे संसार में प्रचलित किया करते हैं। इस कार्य-प्रणाली को अन्तःकरण की प्रेरणावत् समझ सकते हैं। मनुष्य जब कोई काम करना चाहता है तो उसके संकल्प मात्र से उसके हृदय में उत्साह और प्रसन्नता उत्पन्न होती है और जब कभी कोई बुरा काम करना चाहता है तो उसके संकल्प मात्र से भय, शंका और लज्जा उत्पन्न होती है।

दोनों सूरतों में मनुष्यों के भीतर जो उत्साह और अनुत्साह उत्पन्न होता है, उसे कोई जबान से नही कहता न वह (ग्राहक) मनुष्य उसे अपने कानों से सुनता है। यह भाव हृदय ही में उत्पन्न होता है। हृदय के ही माध्यम से मनुष्य उसे सुन और समझ लिया करता है। इसी अन्तःकरण की प्रेरणा की भांति ईश्वरीय ज्ञान भी ग्राहक ऋषियों के हृदय मे उत्पन्न होता है और ऋषि उसे हृदय से ही समझ लिया करते है।

ग्रीक दार्शनिक इपीक्यूरस (Epicurus) ने उपर्युक्त भाति ज्ञान प्राप्ति का समर्थन किया है। उसने एक जगह लिखा है।

सबसे प्रथम भाषा के प्रगट करने में ईश्वरीय प्रेरणा से मनुष्य ने अबोधता के साथ (सोते में बड़बड़ाने जैसे) काम किया, जिस प्रकार से वह (बिना इरादे के) खांसा, छींका या आह भरा करता है इत्यादि।

वृहदारण्यक उपनिषदों में लिखा है—

अस्य महतो भूंतस्य निःश्वसितमेतद्।

ऋग्वेद अर्थात् उस महाभूत (ईश्वर) के स्वांस सेयह जो ऋग्वेद है, प्रगट हुआ है।

माधवाचार्य का समर्थन—

ईश्वर की वंदना माधवाचार्यजी इसप्रकार है :—

यस्य निश्वसितं वेदायो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वदें विद्यातीर्थं महेश्वरम्॥

सर्व विद्यानिधान् परमेश्वर को मैं नमस्कार करता हूं, जिसके श्वास से वेद निकले और जिसने वेदों से समस्त जगत की रचना की है।

वेद उस परमेश्वर से जो कि आकाश से भी बड़ा और ईश्वर से भी अधिक व्यापक है, उसी तरह सहज तथा बिना श्रम के श्वासवत् निकलता है। [शतपथ। काण्ड–१४। अध्याय–५[

परमेश्वर से वेद उसी प्रकार निकलते हैं, जैसे धुआं जलते हुये ईधंन से चुपचाप निः शब्द स्वभावतः बिना श्रम के निकलता है।

वेद का यह प्राप्त ज्ञान भाषा के साथ था। बिना भाषा के कोई बात समझी नहीं जा सकती। ध्यानपूर्वक विचार करने से यह बात साफतौर पर मालूम होने लगती है कि कोई भी नैमेत्तिक बिना ज्ञान शब्दों के अपनी सत्ता प्रकट नही कर सकता। इसीलिये इस देश के विचारको मे महामुनिपतजलि, जैमिनि आदि विद्वानों ने शब्द को नित्य माना है। प्लेटो ने भी इनका समर्थन किया है। मैक्समूलर ने पाइथागोरस प्लेटो आदि का हवाला देते हुए भाषा और ज्ञान की अपृथकता (Inseparability) सिद्ध की है और इस अपृथकता के सिद्धान्त को भाषा विज्ञान की बुनियाद बतलाया है। फिर वह कहता है कि जब यह स्वीकार किया जाता है कि विचार (concept) के बिना शब्द नही कहा जा सकता तो फिर इसकी स्वीकृति मे क्यो हिचकिचाहट होनी चाहिए कि विचार भी शब्द के बिना असम्भव है। उसकी सम्मति मे विचार और भाषा एक सिक्के की दो तरफे है। शब्दो से अर्थ और अर्थ से शब्द पृथक नही किया जा सकता। अर्थात् ज्ञान बिना भाषा के ओर भाषा बिना ज्ञान के असम्भव है। सीलिंग ने इसका समर्थन किया है। हीगल कहता है कि हम शब्दों द्वारा ही विचार करते हैं। अस्तु यहा हम पाठको का ध्यान अथर्ववेद के 'देवस्य पश्य काव्यम् न ममार न जीर्यति।' इस मंत्राश में वेद को काव्य कहा गया है कि "काव्य और कवि शब्द कुशब्दे" धातु से बनते है। ज्ञान ट्रासफर होने के न नष्ट होता है न पुराना पडता है। २०२ दो प्रकार हो सकते हैं, कि या तो जगदीश्वर ने आदि मनुष्यों व ऋषियों को आजकल की भाति बैठकर व लिखकर दे दिया या लिखा दिया हो, यह सब एक ही प्रकार कहा जा सकता है और ईश्वर के शरीरधारी होने पर ही हो सकता है। और किसी प्रकार हो ही नही सकता है। ईश्वर के देह धारी होने मे उसकी नित्यता और सर्वव्यापकतादि गुण भी टिक नही सकते। ईश्वर का ईश्वरत्व ही नही रह सकता। अतः उसका देहधारी होना तो मानने योग्य नही हो सकता।

दूसरा प्रकार यह है जैसे अनन्त विद्या परमेश्वर ने प्रकृति से इस दृश्यमानसम्पूर्ण कार्य जगत की रचना की, इसमें उसे वाह्य साधनों का कुछ भी आवश्यकता नही, इसी प्रकार वेद ज्ञान का प्रकाश भी ईश्वर ने ऋषियों के हृदयों में एक दम कर दिया। उसी ज्ञान में जीव सम्बन्धी सभी आवश्यक ज्ञान था और उसी में व्यवहार की भाषा अर्थात् देव वाणी के सभी नित्य शब्दार्थ सम्बन्धों को भी पुनः प्रकाशित कर दिया।

प्रथम मत की समीक्षा— इस मत मे सृष्टि की उत्पत्ति मे वेद का स्थान मनुष्य की उत्पत्ति से पहिले है। पुरुष सूक्त मे वेद की उत्पत्ति का वर्णन मनुष्योत्पत्ति से पहले मिलता है।

वे यह कहते हैं, कि प्रकृति में वर्तमान वेपनों (कम्पनों) के द्वारा उत्पन्न परिणामों की क्रमिक अवस्था का अनुभव वेद है। वेपन(कम्पन) ही शब्द का स्वरूप है। अव्यक्त शब्दों का क्रमिक प्रतिबोध आदि मनुष्यों के अन्तःकरण में हुआ और वे अन्दर अन्दर नाद रूप में आये फिर स्थान प्रयत्न द्वारा प्रकाशित हुए।

यह पक्ष ठीक नहीं है। सृष्टि की उत्पत्ति में वेद मनुष्यों से पहले हुए। ईश्वर के ज्ञान में तो थे ही, उनका प्रकाश तो तभी कहा जायेगा, जब जीवों तक पंहुचे, ऐसा नहीं। पुरुष सूक्त में केवल पदार्थों की उत्पत्ति वर्णन हम पाते हैं। वहां क्रम से यह तात्पर्य नहीं है कि घोड़ों के पश्चात् भेड़ बकरियां पैदा हुई अपितु यह सब उस अनन्त सामर्थ्य जगदीश्वर से ही उत्पन्न होते हैं, इतना ही अभिप्राय है। यदि शब्द अनित्य हो तो वेपन घट सकता है। शब्द के नित्य में ऋषि मुनि एक मत हैं। हां नित्य शब्द से प्रकाश होना घट सकता है। नाद होकर प्रकाशित होना भी इसलिये ठीक नही कि शब्द की उत्पत्ति के विज्ञान को बनाने वाले ऋषियों ने कहा है कि :—

आकाश वायु प्रभवः शरीरात्। समुच्चरन् वक्त्रमुपेति नादः।
स्थानान्तरेषु प्रविभाज्यमानो, वर्णत्वमागच्छति यः स शब्दः।

(पाणिनीय शिक्षा)

आकाश और वायु का संयोग होता है फिर वह शरीर से ऊर्ध्वभाग में ऊपर को उठता हुआ मुख में पहुँचता है उसे नाद कहते हैं और नाद भिन्न स्थानों में से विभक्त होकर वर्णमात्र को प्राप्त होता है। अर्थात् जब शब्द का रूप धारण करता है।

यदि केवल यही उपर्युक्त वाक्य होता, तब तो वेपनों द्वारा नाद की उत्पत्ति शब्द उत्पन्न हो जाने का सिद्धान्त माना जा सकता था, परन्तु उपर्युक्त सूत्र के साथ ही दूसरा सूत्र है जो शब्दोत्पत्ति के इससे भी पूर्व अर्थात् वेपन के सिद्धान्त को बहुत उत्तम रीति से बतलाता है यह कहना है :—

आत्मा बुद्धया समेत्यार्थान् मनो युङ्क्ते विवक्षया।
मनः कायाग्निमोहन्ति स प्रेरयति मारुतम्।

आत्मा बुद्धि से अर्थों को संचालित करके मन को कहने की इच्छा से प्रेरित करता है। मन शरीराग्नि को उत्तेजना देता है। वह आगे फिर वायु को प्रेरित करता है पुनः वह शब्द का जनक होता है।

कहने का अभिप्राय यह है कि कम्पन से पूर्ववर्ती क्रिया मे क्या क्या होना अनिवार्य है यह विचारना होगा। ऐसी अवस्था मे विचारने से पता लगता है कि जब तक पहिले बुद्धि न हो वेपन अर्थात् लहरें ही उत्पन्न नही हो सकती। क्योकि "आत्मा बुद्धया समेत्यार्थान्" के अनुसार आत्मा का बुद्धि द्वारा अर्थों को पहिले इकट्ठा करना अनिवार्य है। अर्थात् उनका बिना वेपन के प्रादुर्भाव ही असम्भव है। होगे भी तो उनका सम्बन्ध किससे होगा ? अर्थात् यदि उस समय आदि सृष्टि मे परम्परागत-बुद्धि (ज्ञान) मात्र ही होगा और केवल उसी की प्रेरणा रहेगी तो फि जीवो को एक जैसा ज्ञान वेपन द्वारा प्राप्त होगा। उस ज्ञान का ग्रहण अर्थात् कारण तो एक जैसा कभी नही हो सकता। कहने का यह भाव कि ज्ञान वृद्धि की प्रक्रिया आरम्भ से ही माननी पडेगी। पदार्थों का और बुद्धि का होना आरम्भ मे ही आवश्यक है। तभी आत्माबुद्धया समेत्यार्थान् की प्रक्रिया बन सकती है। बिना निमित्त ज्ञान के यह व्यवस्था चल नही सकती यह हम पूर्व कह आये हैं। अत यह वेपन वाली प्रक्रिया ठीक नही। ठीक प्रक्रिया यही हो सकती है कि आदि सृष्टि मे जीवो में स्वाभाविक ज्ञान था, उसी मे जगदीश्वर द्वारा नैमित्तिक ज्ञान का पुट दिया गया। "पूर्वेषामपि गुरु', शास्त्र के इस पूर्वोक्त वचनानुसार परमात्मा ने ही ज्ञान तथा भाषा का उपदेश किया जैसा कि पूर्व कह आये हैं। इसलिए यह वेपन वाली प्रक्रिया ठीक नहीं। ठीक प्रक्रिया यही हो सकती है कि आदि सृष्टि मे जीवो का जो स्वाभाविक-ज्ञान था उसी में जगदीश्वर द्वारा पुट दिया पूर्वेषामपि गुरु शास्त्र के इस पूर्वोक्त वचनानुसार परमात्मा ने ही ज्ञान तथा भाषा का प्रकाश आदि ऋषियो के हृदय मे किया और आगे उन्होने ही सब जीवो को ज्ञान तथा भाषा का उपदेश किया, जैसा कि पूर्व कहआये हैं। इसलिये वेपन (कम्पन) द्वारा नादकी उत्पत्ति होकर वेद का ज्ञान उत्पन्न हुआ, यह विचार युक्ति युक्त नहीं ठहरता, नहीं, ऋषि मुनियो की प्रक्रिया के अनुकूल बैठता है।

(क्रमश)

सूचना

इस अङ्क मे कुलपति जी की बर्मिघम यात्रा का संक्षिप्त विवरण दिया गया है। किन्तु उनकी यह यात्रा विश्वविद्यालय के लिए अत्यन्त गौरवपूर्ण है। अत यात्रा की महत्ता को देखते हुए जनवरी अङ्क मे इस यात्रा का विस्तृत विवरण दिया जायेगा।

—सम्पादक

७५ वर्ष पूर्व गुरुकुल का वृत्तान्त—

स्वामी श्रद्धानन्द की लेखनी से—

प्रस्तुतकर्त्ता— **जगदीश प्रसाद विद्यालङ्कार**

ब्रह्मचारियों के स्वास्थ्य में पहिले तीन दिनों में कुछ परिवर्तन सा प्रतीत हुआ। दिन को कुछ गर्मी पड़ने लगी जिससे नित्य पांच छः ज्वर से पीड़ित होने लगे किन्तु चौथे दिन फिर एक वा दो की औसत रह गई। इस समय केवल एक को कुछ ज्वर है शेष सब अच्छे हैं।

अध्यापक रामदेव जी बी० ए० को एक दिन ज्वर आया था। ज्वर तो उतर गया था किन्तु वह जलवायु परिवर्तन के लिये १५ दिनों की छुट्टी लेकर लाहौर डाक्टर भारद्वाज जी के पास चले गये हैं। महाशय सियाराम जी पूर्णमासी पर जाने वाले थे किन्तु उनके पत्र के ज्ञात हुआ कि देहरादून में ज्वर के कारण वह अत्यन्त दुर्बल हो गये हैं अतएव अमावस्या के पश्चात् आवेंगे सभी अध्यापक बड़े परिश्रम से अपने कार्य में लगे हुये हैं।

दक्षिण हैदराबाद की प्रजा की सहायता के लिए एक ओर गुरुकुल निवासियों ने चन्दे की सूची खोली जिस पर ७० रु० जमा हो चुके हैं। ब्रह्मचारियों ने यह हाल सुनकर मुख्याधिष्ठाता से आज्ञा ले स्वयं एक अधिवेशन किया। ११ से १३ श्रेणी तक के ब्रह्मचारी इस जलसे में सम्मिलित थे। इस अधिवेशन के सभापति का काम ब्रह्मचारी जयचन्द्र ने किया इसके पश्चात् सर्व सम्मति से यह निश्चय हुआ कि– (१) दक्षिण हैदराबाद के अधिपति श्री निजाम साहिब की सेवा में इस विपत्ति के अवसर पर दुःखिता प्रकट करने के लिये तार भेजा जाय तथा (२) हैदराबाद के लज विप्लव में पीड़ित नर-नारियों की साहयतार्थ ७ दिनों तक दाल, घी तथा रोटियों का घी खाना बन्द कर दें और गुरुकुल मुख्याधिष्ठाता जी से प्रार्थना करें कि इनकी कीमत के समान धन हैदराबाद सहायता कोष में जितना शीघ्र हो सके—भिजवा दें, प्रथम निश्चय के अनुसार निम्न-लिखित तार श्रीमान् निजाम हैदराबाद को भेजा गया—

Gurukul Brahmacharies passed usolution of deep sympathey with your Highress. They Contribution cost of week rations in aid of suffers,

इस अधिवेशन में ब्रह्मचारियों के अतिरिक्त कोई अध्यापकादि सम्मलित न थे और न कोई पथ दर्शक समाजों की कार्यवाही के नियम विद्यमान थे, इसलिये वाद विवाद मे देर तो लगी किन्तु फिर भी काम निर्विघ्न समाप्त हुआ। आशा है कि गुरुकुल के ब्रह्मचारी शनैः शनैः आत्म सन्तान के भाव को मन से ग्रहण करते हुये स्वप्रबन्ध का काम सीखेंगे।

(सद्धर्म प्रचारक बुधवार ६ कार्तिक सं० १९६५ ता० २१ अक्टूबर १९०८)

सूचना

पाठकों को सूचित करते हुए हमें अपार प्रसन्नता हो रही है कि महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष्य में इस अङ्क के पश्चात् गुरुकुल पत्रिका का (अक्टूबर–नवम्बर–दिसम्बर) त्रैमासिक विशेषाङ्क प्रकाशित किया जायेगा।

–सम्पादक

गुरुकुल समाचा

निम्न विषयों में शिक्षा विषय समिति की बैठकें सम्पन्न

संस्कृत विभाग :—

१४ सितम्बर को विभागाध्यक्ष डॉ० निगमशर्मा के संयोजकत्व में संस्कृत-विभाग की पाठ्य-क्रम निर्धारण समिति की बैठक हुई जिसमें विशेषज्ञ के रूप में डॉ०कृष्णकान्त त्रिपाठी बी.एस.एस.बी. कालेज के सस्कृत विभागाध्यक्ष तथा डॉ० रामनाथ वेदालङ्कार भू. पू. उपकुलपति गुरुकुल कांगड़ी तथा भू.पू. प्रोफेसर एवं अध्यक्ष दयानन्द पीठ चण्डीगढ़ को आमन्त्रित किया गया। इसमें पाठ्यक्रम को छात्रोपयोगी बनाने के लिए संशोधनों पर विचार किया गया।

वनस्पति विभाग :—

वनस्पति विभाग में शिक्षा - समिति की बैठक दिनाक १४–९–८३ को सम्पन्न हुई। बाह्य विशेषज्ञ के रूप में डॉ० जी०एस० पालीवाल, अध्यक्ष, वनस्पति विभाग, फैकल्टी ऑफ साइंस, गढवाल विश्वविद्यालय, सम्मिलित हुए। इस बैठक में पाठ्यक्रम में संशोधन किया गया तथा स्नातकोत्तर कक्षाओं एवं पी–एच०डी० के लिए संस्तुति की गई।

मनोविज्ञान विभाग :—

दिनाक १६–९–१९८३ को मनोविज्ञान विभाग में शिक्षा विषय समिति की बैठक सम्पन्न हुई। बाह्य विशेषज्ञ के रूप डॉ० लाल वचन त्रिपाठी, प्रो० एवं अध्यक्ष मनोविज्ञान विभाग गोरखपुर विश्व-विद्यालय तथा डॉ० राजनारायण, भूतपूर्व प्रो० एवं अध्यक्ष, मनोविज्ञान विज्ञान, लखनऊ विश्वविद्या-लय सम्मिलित हुए। इस बैठक में पाठ्यक्रम में संशोधन किये गये।

इतिहास विभाग :—

दिनाँक २९–९–८३ को प्राचीन भारतीय इतिहास विभाग में शिक्षा विषय समिति की बैठक सम्पन्न हुई। बाह्य विशेषज्ञ के रूप में जे०एन०यू० के प्रो० राम राहुल और गढ़वाल विश्वविद्यालय के डॉ० के०पी० नौटियाल सम्मिलित हुए। इस बैठक में पाठ्यक्रम में कुछ महत्त्वपूर्ण संशोधन किये गये तथा पोस्ट डॉक्टोरल विषय के लिए प्रस्ताव पारित हुआ। बैठक का संयोजन प्राचीन भारतीय इतिहास विभाग के अध्यक्ष डॉ० बी०सी० सिन्हा ने किया।

योग कक्षाएं प्रारम्भ—१५ सितम्बर से इस सत्र की योग शिक्षा की कक्षाएं प्रारम्भ हुई । इसका प्रारम्भ श्री हूजाजी ने किया । इस अवसर पर श्री हूजाजी ने योग के महत्त्वपूर्ण पक्षों पर प्रकाश डाला तथा इसके क्रियात्मक पक्ष पर विशेष जोर दिया । उन्होने यह भी बताया कि विदेशों में योग के प्रति विशेष आकर्षण है तथा वहाँ पर इसके प्रचार एवं प्रसार की विशेष आवश्यकता है । यह सत्र १५ दिसम्बर तक चलेगा । ये कक्षाएं डा० त्रिलोक चन्द, दर्शन विभाग के निर्देशन मे चलेगी ।

संस्कृत दिवस समारोह सम्पन्न—

१२ सितम्बर को डा० निगम शर्मा, विभागाध्यक्ष-संस्कृत विभाग के निर्देशन में सस्कृत-दिवस समारोह पूर्वक मनाया गया । इसमें पंचपुरी हरिद्वार के सस्कृत महाविद्यालयों के संस्कृतानुरागियो तथा विभिन्न सस्थाओं के प्रतिनिधियों ने भाग लिया । समारोह की अध्यक्षता डॉ० कृष्ण कुमार, रीडर एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग, गढवाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर ने की तथा मुख्य अतिथि डॉ० गणेशदत्त शर्मा, अध्यक्ष-सस्कृत विभाग, एन०ए०एस० कॉलेज मेरठ रहे । विशिष्ट वक्ताओ मे प०सत्यव्रत शास्त्री, धामपुर, डॉ० ध्रुवमित्र त्रिपाठी रहे । समारोह का संयोजन प्रो० वेदप्रकाश शास्त्री ने सफलतापूर्वक किया ।

संस्कृत दिवस के उपलक्ष्य में भाषण के श्लोकोच्चारण प्रतियोगिता का भी आयोजन किया गया, जिसमें गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के छात्रो तथा अन्य विद्यालयों के छात्रों ने भी भाग लिया । प्रतियोगिता मे भाग लेने वाले विशिष्ट वक्ताओ को पुरस्कार वितरित किये गये । इसके अतिरिक्त विभिन्न छात्रों को सान्त्वना एव प्रोत्साहन पुरस्कार भी दिये गये ।

समारोह के अन्त में मुख्य अतिथि एवं विभागाध्यक्ष ने सस्कृत भाषा में ही ओजस्वी भाषण दिये, जिसकी विद्वानों द्वारा भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी । समारोह का समापन जलपान के साथ हुआ ।

कुलपतिजी द्वारा सम्बोधन—दिनांक २०सितम्बर १९८३ को विश्वविद्यालय के स्टॉफरूम में कुलपति श्री हूजाजी ने अध्यापकों तथा विद्यार्थियों को सम्बोधित किया । यह आयोजन विशेषरूप से उनके यूरोपीय देशो के भ्रमण के पश्चात् उनके अनुभवों से लाभान्वित होने के उद्देश्य से किया गया था । उन्होंने संक्षिप्त भाषण में कहा कि वे यूरोप के जिन जिन देशों में गये वहाँ पर वैदिक संदेश को सुनने की जिज्ञासा विद्यमान है । यह विश्वविद्यालय वैदिक ज्ञान के प्रचार एव प्रसार में अपनी यथोचित भूमिका के निर्वाह में सक्षम है । श्री कुलपति जी ने यह भी बताया कि यूरोप के लोग बहुत ही समयबद्ध और अनुशासित हैं तथा अपने अमूल्य समय के एक भी क्षण को व्यर्थ नही जाने देते हैं । हम इस क्षेत्र में उनसे सीख ले सकते हैं ।

गुरु विरजानन्द दिवस—

दिनाङ्क २४ सितम्बर १९८३ को वेद एवं कला महाविद्यालय में गुरु विरजानन्द दिवस मनाया गया। इस अवसर पर विश्वविद्यालय के स्टाफ रूप में एक सभा आयोजित की गयी जिसमें सभी अध्यापक एवं विद्यार्थी उपस्थित हुए। इस सभा की अध्यक्षता कुलपति श्री हूजा जी ने की। वेद मन्त्रों के पाठ के साथ सभा प्रारम्भ हुई। सर्वप्रथम छात्रों ने भाषण दिये। इस के उपरान्त डॉ० निगम शर्मा डॉ० विष्णुदत्त राकेश तथा प्रो० मनुदेव बन्धु ने गुरु विरजानन्द के जीवन चरित्र पर प्रकाश डाला। कुलपति श्री हूजा ने अपने संक्षिप्त भाषण में गुरु विरजानन्द जी के प्रथम स्वाधीनता संग्राम में अमूल्य योगदान की चर्चा की। इस अवसर पर मेरठ विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग के प्रो० एवं अध्यक्ष डॉ० एन० एस० चौहान भी पधारे हुए थे। उन्होंने अपने विषय पर संक्षिप्त तथा सारगर्भित भाषण दिया। अन्त में प्रो० रामप्रसाद वेदालङ्कार आचार्य एवं उपकुलपति ने गुरु विरजानन्द जी के संघर्षपूर्ण जीवन का परिचय दिया। इस सभा का संयोजन प्रो० वेदप्रकाश शास्त्री, संस्कृत विभाग ने किया।

तेरहवां राष्ट्र मण्डल विश्वविद्यालयीय सम्मेलन—

तेरहवां राष्ट्रमण्डल विश्वविद्यालय सम्मेलन बर्मिंघम (इंग्लैण्ड) में गत माह अगस्त में सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में भाग लेने कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा बर्मिंघम गये थे। सम्मेलन १२ अगस्त से २० अगस्त तक चला। सम्मेलन में भाग लेने के उपरान्त कुलपति जी ने यूरोप के कुछ देशों का भी भ्रमण किया। उन्होंने आयरलैंड, फ्रांस, हालैंड, पश्चिम जर्मनी, बैल्जियम आदि देशों के प्रमुख विश्व विद्यालयों का अवलोकन किया एव वहा की शिक्षा नीति के सम्बन्ध में प्रबुद्ध शिक्षा शास्त्रियों से भेंट वार्ता की। १२ तथा १३ अगस्त को बर्मिंघम विश्व विद्यालय के परिसर में कुलपतियों का सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में मुख्य रूप से शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं तथा डिग्री कोर्स की अवधि के निर्धारण पर विस्तृत चर्चा हुई।

१५ अगस्त के सम्मेलन में मुख्य अतिथि राष्ट्र मण्डल के महामन्त्री श्री दत्त रामफल थे। इस सम्मेलन में मुख्य विषय था—"तकनीकी आविष्कार और विश्वविद्यालयों की भूमिका"। इस विषय पर प्रबुद्ध शिक्षा शास्त्रियों ने अपने विचार प्रस्तुत किये। इस गोष्ठी में यह बात मुख्य रूप में उभर कर आई कि विश्वविद्यालयों का कर्तव्य समाज में बौद्धिक और नैतिक नीवें प्रतिष्ठत करना है तथा सार्वभौम भविष्य के निर्माण के लिए प्रबुद्ध स्नातकों को तैयार करना है। कुलपति श्री हूजाजी ने "निरन्तर शिक्षा" एवं "सर्वांगीण ग्राम सुधार में विश्वविद्यालयों की भूमिका" पर अपने सारगर्भित विचार प्रस्तुत किये। इस सम्बन्ध में उन्होंने कांगड़ी ग्राम (मातृ-ग्राम) के उत्थान में गुरुकुल कांगड़ी

विश्वविद्यालय के योगदान का उल्लेख किया तथा साथ ही उन्होंने सामाजिक सुधार में और पर्यावरण को स्वच्छ बनाने में विश्वविद्यालयों की भूमिका पर विशेष जोर दिया। अपने विदेश प्रवास की अवधि में कुलपति श्री हूजा ने आर्य समाज के साप्ताहिक सत्संग में और हिन्दू परिषद् के मासिक अधिवेशन में भी भाग लिया।

आचार्य प्रो० रामप्रसाद वेदालंकार विभिन्न संस्थाओं में आमन्त्रित :

दिनांक ४–८–८३ आचार्य श्री रामप्रसाद वेदालंकार 'वेद संस्थान', दिल्ली, द्वारा आमन्त्रित किये गये। वहां पर उन्होंने "स्वाध्याय के महत्त्व" पर एक व्याख्यान दिया। दिनांक ३०–८–८३ को आर्य विद्यामन्दिर (पब्लिक स्कूल) सांताक्रुज, बम्बई के विशेष आमन्त्रण पर आचार्य श्री रामप्रसाद वेदालंकार ने वहां के स्टाफ को सम्बोधित किया तथा एक महत्त्वपूर्ण विषय "वैदिक एकेश्वरवाद" पर व्याख्यान दिया। दिनांक ३१–८–८३ को आचार्य श्री रामप्रसाद वेदालकार ने योगेश्वर श्री कृष्णचन्द्र के जीवन चरित्र पर प्रकाश डाला तथा यह बताया कि वे आज भी हमारे लिए प्रेरणा के स्रोत हैं।

डा० बी० डी० जोशी विभिन्न सम्मेलनों में आमन्त्रित :—

१—जून १९, २०, १९८३ को गढवाल विश्वविद्यालय के पौड़ी परिसर में दो दिवसीय सेमीनार हुआ। सेमिनार का विषय था— "हिमालयन हैंरिटेज एण्ड इनवायरोन्मेंट"। डा० बी० डी० जोशी, अध्यक्ष जन्तु विज्ञान विभाग ने उक्त राष्ट्रीय सेमिनार में दो सत्रों की अध्यक्षता की एवं अपना शोध-पत्र पढ़ा।

२—१३ अगस्त से १६ अगस्त ८३ तक कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर कश्मीर में "यूथ एण्ड बायोस्फेयर" संस्था के माध्यम से "इनविरोनमेन्टल स्ट्रैटेजी" पर एक राष्ट्रीय कान्फ्रेन्स में डा० जोशी ने भाग लिया और अपना एक निबन्ध "प्रोब्लम्स एण्ड प्रोसपेक्ट्स ऑफ एक्वारिसोर्स मैनेजमेन्ट्स इन हिमालयाज" विषय पर पढ़ा। पेनल डिसकसन्स में डॉ० जोशी के विषयों को सम्मिलित किया गया।

३—दिनांक ११–९–८३ को डॉ० बी० डी० जोशी ने रोटरी क्लब ज्वालापुर की सभा में "मनुष्य के सामान्य परजीवी" विषय पर एक व्याख्यान दिया।

४—दिनांक १६ एवं १७ सितम्बर ८३ को गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर में "प्रौढ़-शिक्षा" विषय पर एक राष्ट्रीय कार्यशाला आयोजित हुई। जिसमें डॉ० बी० डी० जोशी ने गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि के रूप से भाग लिया। उक्त कार्यशाला में भारत-सरकार के प्रतिनिधियों ने आश्वासन दिया कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय मे "प्रौढ-शिक्षा" की इकाईयां स्थापित की जायेगी। इस विषय में कुलपति जी के निर्देशानुसार डॉ० बी० डी० जोशी एक योजना बनाकर यू०जी०सी० को प्रेषित करेंगे।

गुरुकुल पत्रिका के नियम

१—गुरुकुल पत्रिका मासिक है।

२—पत्रिका का वार्षिक मूल्य १२ रुपये है। धनादेश व्यवसाय प्रबन्धक, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय क नाम भेजने का कष्ट करें।

३—परिवर्तनार्थ पत्रिका का भी प्रबन्ध सम्पादक के नाम ही भेजें।

४—गुरुकुल पत्रिका में लेख प्रकाशन के लिए लेख स्वच्छ, स्पष्ट और प्रतिपादन की दृष्टि से परिपूर्ण होना चाहिये।

५—लेख संस्कृत अथवा हिन्दी भाषा में लिखा हो।

६—रचना गुरुकुलीयता के अनुरूप हो।

७—लेख वैदिक संस्कृत तथा दर्शन साहित्य आदि किसी भी विषय पर गवेषनात्मक, तथ्यात्मक, समीक्षात्मक, तुलनात्मक अथवा ऐतिहासिक पृष्टभूमि पर लिखा हो।

८—संस्कृत अथवा हिन्दी भाषा में श्लोक, कविता व्यंग्य अथवा चमत्कारिक प्रसङ्ग भी हो सकते हैं।

९—लेख वैदिक संस्कृति के पोषक हों।

१०—विश्व की अन्य प्रतिष्ठित रचनाएं तथा उनके अनुवाद भी स्वीकृत किये जा सकते हैं।

११—कृपया विवादास्पद एव मौलिकता रहित लेख न भेजें।

१२—किसी भी लेख, कविता आदि के प्रकाशन, संशोधन, परिवर्धन आदि में सम्पादक का निर्णय सर्वोपरि होगा।

१३—बिना डाक-व्यय प्राप्त किये अप्रकाशित लेखादि लोटायें न जा सकेंगे।

—सम्पादक

गुरुकुल पत्रिका

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय जिला-सहारनपुर, उ० प्र०